हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष १४, अंक ५४, अप्रैल - 2012 • Year 14, Issue 54, April - 2012

इस अंक में

●सम्पादकीय 03
●उद्गार 04

साक्षात्कार

●एस. आर. हरनोट 10

कहानियाँ

●मरीचिका :
सुदर्शन प्रियदर्शिनी 16

●सफ़ेद चादर :
अनिल प्रभा कुमार 19
●बाँझ :
शाहिदा बेगम 'शाहीन' 23

आलेख

●व्यंग्य निबंध
डॉ. सुरेश अवस्थी 26

●संस्मरण
अखिलेश शुक्ल 28

लघुकथाएँ

●तंग कोठरी
नीरज नैथानी 31

●आग
सुधा भार्गव 31
●भाग्य
रामकुमार आत्रेय 31

कविताएँ

●ख्वाबों सी लड़की : रश्मि प्रभा 32
●मैंने देखा : कादम्बरी मेहरा 32
●मन कबीरा : शशि पाधा 32
●वह हमारा प्यार है : नरेन्द्र सिन्हा 32
●शब्द सफ़ेद : निर्मल गुप्त 33
●उलझन : शकुन्तला बहादुर 33
●निहारे नयन : श्यामल सुमन 33

लेखकों से अनुरोध : बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा आलेख न भेजें । अपनी सामग्री यूनीकोड फॉंट में टैक्स्ट फाइल के द्वारा ही भेजें । आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र भी अवश्य भेजें ।

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
वर्ष : १४, अंक : ५४
अप्रैल-जून २०१२
मूल्य : ५ डॉलर (5$)

ग़ज़लें

●डॉ. मोहम्मद आज़म 34
●नवीन सी. चतुर्वेदी 34
●कंचन चौहान 34

क्षणिकाएँ

●रचना श्रीवास्तव 35
●डॉ. वंदना मुकेश 35
●मंजु मिश्रा 35

माहिया

●रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 36

स्तंभ

●दृष्टिकोण:
मधु अरोड़ा 37
●विश्व के आँचल से :
विजय शर्मा 40

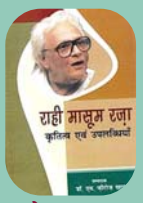

●पुस्तक समीक्षा :
डॉ. दया दीक्षित 47
श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी 49
●विश्वविद्यालय के प्रांगण से:
स्टीवन गूछार्दी 51
●पुस्तकें जो हमें मिलीं 52
●साहित्यिक समाचार 55
●भाषान्तर :
रमेश शौनक 58

●नव अंकुर :
संध्या द्विवेदी, शानू सिन्हा 59
●अधेड़ उम्र में थामी क़लम:
ऊषा देव 61
●विलोम चित्र काव्यशाला 62
●चित्र काव्यशाला 63

आख़िरी पन्ना

●सुधा ओम ढींगरा 64

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिये हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिये अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते हुए निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

1. *हिन्दी चेतना अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर तथा जनवरी में प्रकाशित होगी ।*
2. *प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।*
3. *पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।*
4. *रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।*
5. *प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा ।*
6. *पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं । संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।*

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक

श्याम त्रिपाठी , कैनेडा

सम्पादक

सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सह-सम्पादक

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत

पंकज सुबीर, भारत

अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल

पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत

(मुख्य संपादक, पंजाब केसरी पत्र समूह)

कमल किशोर गोयनका, भारत

पूर्णिमा वर्मन, शारजाह

(संपादक, अभिव्यक्ति- अनुभूति)

अफ़रोज़ ताज, अमेरिका

(प्रोफ़ेसर-यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलाईना, चैपल हिल)

निर्मला आदेश, कैनेडा

विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी

सरोज सोनी, कैनेडा

राज महेश्वरी, कैनेडा

श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि

डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान

भारत

चाँद शुक्ला 'हदियाबादी'

डेनमार्क

दीपक 'मशाल', यूके

अमित सिंह, भारत

मोर पंखिया शाम सजी है नीले पट पर,
सुरमयी झाँझर बजा रही हैं लहरें तट पर,
मृदुल पवन की मधुर गंध का आवेदन है,
उदयाचल से अस्ताचल का आलिंगन है,
नन्हीं-नन्हीं आँखों में खिलती आशाएँ,
बिन बोले सब कह जातीं मन की भाषाएँ।

-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

: आवरण :

माधवी बोरीकर, कैनेडा arvind.narale@sympatico.ca

: डिज़ायनिंग :

सनी गोस्वामी, पी सी लैब, सीहोर sameergoswami80@gmail.com

Printed By: www.print5express.com

संपादकीय

गत कुछ वर्षों से 'विश्व हिंदी सचिवालय' मॉरिशस द्वारा प्रकाशित 'विश्व हिंदी पत्रिका' नि:संदेह हिंदी की विश्व व्यापी सेवा में अग्रणीय भूमिका निभा रही है । किसी ने ठीक ही कहा है, ''रोम एक दिन में नहीं बन गया ।'' जो संकल्प और दृढ़ निष्ठा हम इनकी देख रहे हैं, उससे हमारे हृदय में आशा की एक लहर अवश्य जाग गई है । इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि हम किस दिशा की ओर जा रहे हैं । हमें ख़ुशी है यह शुभ कार्य भारत से सुदूर एक ऐसे देश में हो रहा है, जहाँ हर भारतीय के हृदय में हिंदी के प्रति अनुराग और समर्पण है । मॉरिशस वासियों ने हिंदी को जिस तरह अपने बलबूते पर सुरक्षित रखा है, वह अपने आप में एक उदाहरण है ।

जिस ढंग से दो देशों के प्रतिनिधि इस योजना पर कार्य कर रहे हैं, वह एक दिन अपना रंग तो अवश्य दिखायेगी । जो नीतियाँ इस सिलसिले में बनाई जा रही हैं और उन्हें कार्यान्वित किया जा रहा है, वह अत्यंत प्रशंसनीय और अनुकरणीय है । विश्व हिंदी पत्रिका के विशेषांक में भारत से बाहर जिन देशों में हिंदी के लिए अभी तक जितनी भी प्रगति हुई है, उसका मूल्यांकन देखकर हमें हर्ष के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी का जो कार्य पिछले ५० वर्षों में भारत से बाहर किया जा रहा है, यदि वही भावना भारत में जागृत हो जाए तो हिन्दी की स्थिति बदल सकती है ।

इस पत्रिका में जिन नीतियों, उपकरणों की ओर संकेत किया गया है यदि उन्हें अच्छी तरह मान्यता दी जाए तो वे हिंदी के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं । जिन-जिन देशों में भारतीय मूल के लोग बसे हुए हैं वे कैसी-कैसी भयंकर परिस्थितियों के बीच में रहकर हिंदी भाषा को हृदय से चिपकाए हुए हैं, उसे सचमुच अपनी पूज्य माँ की तरह पूजते हैं । ये सभी लोग बधाई के पात्र हैं । इन्हें केवल थोड़ा सा प्रोत्साहन और उत्साह देने की आवश्यकता है और वे शीघ्र ही आगे बढ़ सकते हैं ।

२००९ में इस पत्रिका ने अपने प्रथम वर्ष के विशेषांक में लगभग ४० देशों के विषय में एक रिपोर्ट दी थी, जिसमें भारत के बाहर हिंदी के प्रयासों का विशेष उल्लेख किया गया था । आज विश्व के लगभग १२५ देशों में हिंदी पढ़ाई जाती है, यह हिंदी प्रेमियों के लिए शुभ समाचार है, किन्तु उनके सामने अनेकों चुनौतियां भी हैं और हमें उन पर गम्भीरता से विचार करना होगा और उनके लिए हमें अनेकों साधन और शोध की योजनाएँ बनानी होंगी ।

इस पत्रिका में श्रीमती विजया सती के लेख ''हंगरी में हिंदी: गतिविधियाँ और प्रेरणा के मूल स्त्रोत'' एक शोध पूर्ण, सूचनात्मक लेख है जिसमें हंगरी जैसे देश में हिंदी भाषा पिछले ५० वर्षों से धाक जमाए हुए हैं और इसे जो ऐतिहासिक मान्यता प्राप्त हई है, हिंदी प्रेमियों के लिए एक गौरव की बात है । आज भी लोग टैगोर, मुलकराज आनन्द, प्रेमचन्द, खुशवंत सिंह , गिरीश कर्नाड जैसे साहित्यकारों से परिचित हैं । इन लेखकों से प्रभावित हो कर हंगरी वासियों में भारत के विषय में जानने की जिज्ञासा बढ़ी है ।

'विश्व हिंदी सचिवालय' के विश्वव्यापी दृष्टिकोण से अनेकों सम्भावनाएँ उभर सकती हैं । सबसे अधिक लाभ विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य को होगा, क्योंकि भारत के बाहर पहली बार इस प्रकार का एक वातावरण बन रहा है, जिसमें हिंदी की दूरियाँ मिट जायेंगी । हमें केवल अपना दृष्टिकोण बदलना होगा ।

आपका

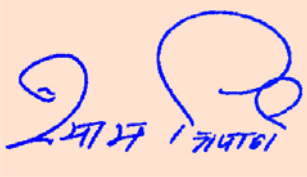

श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://kathachakra.blogspot.com

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
पर जाकर

उद्‌गार

हमारे लिए हर पत्र विशेष एवं महत्त्वपूर्ण है । प्रेम जनमेजय अंक पर कई समीक्षात्मक पत्र मिले हैं । पत्र लम्बे होने के कारण इस बार हम उन्हें स्थान नहीं दे पाए । आगामी अंकों में आप उन्हें पढ़ पाएँगे । –सम्पादक

'' हिंदी चेतना '' के प्रेम जनमेजय विशेषांक के लिए आभारी हूँ । सात समंदर पार की पत्रिका में उच्च कोटि के स्तरीय आलेख देखकर बहुत प्रसन्नता हुई । जनमेजय जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न आयामों से परिचित कराने वाली सामग्री समेटे यह अंक तो एक प्रकार का शोधग्रंथ बन गया है । समय पर पत्रिका का अंक निकालने की सीमा के बावजूद स्तरीय और वह भी इतने सारे आलेख जुटा लेना बहुत बड़ी उपलब्धि है । इसके लिए मैं सभी रचनाकारों का तथा पत्रिका के सम्पादन से जुड़े लोगों का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ, और बधाई देता हूँ ।

–रवीन्द्र अग्निहोत्री (आस्ट्रेलिया)

●●●●

'हिंदी चेतना' की प्रति मिली । प्रेम जनमेजय विशेषांक देख कर अभिभूत हूँ । बहुत सुन्दर संयोजन है । किसी रचनाकार पर केन्द्रित ऐसा अंक मेरे देखने में नहीं आया अब तक । वो भी विदेशी ज़मीन से ! निस्संदेह प्रेम जी योग्य और उचित रचनाकार तो हैं ही लेकिन इस तरह का अंक आना सौभाग्य भी है ।

मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारियेगा ।

–जवाहर चौधरी (इन्दौर- भारत)

●●●●

'हिंदी चेतना' के नए अंक के लिए आपको बधाई । उच्चस्तरीय सामग्री से सुसज्जित उसको पढ़ – देख कर आपका यह कहना मिथ्या नहीं है – 'हिंदी चेतना' का सफ़र अब नयी मंजिल की तरफ चल पड़ा है । सच्ची बात तो यह है कि हिंदी चेतना का सफ़र उसी समय से नयी मंजिल की तरफ चल पड़ा था, जबसे सुधा जी आप उससे जुड़ीं । आपका सम्पादन अनूठा है । आपके अनूठे सम्पादन की सुगंध यत्र- तत्र सर्वत्र फैलनी ही थी । आज हिंदी चेतना का नाम है । विदेश में प्रकाशित, भारत में उसकी गूँज – अनुगूँज है ।

–प्राण शर्मा (यूके)

●●●●

साहित्य की सभी विधाओं की बानगी बहुत सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की गई है। महत्वपूर्ण यह है कि रचनाओं का स्तर हर अंक के साथ ऊँचा ही होता जा रहा है- चाहे वह कहानियाँ हों, आलेख, स्थायी स्तंभ या कविताएं। आपका ''आख़िरी पन्ना'', मेरा पढ़ने का पहला पन्ना होता है। आपने सही कहा है कि जल्दी छपने के लोभ में बहुत सी रचनाएँ अधपकी ही छप जाती हैं। साहित्यकार जब स्वयं ही अपना श्रेष्ठ प्रस्तुत करता है तब वह पाठक तक भी उसी रूप में पहुँचता भी है।

हिन्दी –चेतना के प्रकाशन के साहसी और प्रशंसनीय योगदान के लिए बहुत–बहुत बधाई।

–अनिल प्रभा कुमार (अमेरिका)

●●●●

मैंने आपकी पत्रिका ''हिंदी चेतना'' का अप्रैल –जून २०११ का अंक ऑन लाइन पढ़ा । मुझे आपसे यह कहने में अत्यधिक हर्ष हो रहा है कि विदेश में हिंदी की इस स्तर की पत्रिका को देखकर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं थी, मुझे विदेश में अपने प्रवासी भाई- बहनों के बीच अपनी मातृभाषा की लोक प्रियता देखकर बड़े गर्व की अनुभूति हो रही है । मेरे विचार से मैं ही नहीं वरन हर भारतीय आप लोगों के इस प्रशंसनीय कार्य पर आपको हार्दिक बधाई देना चाहेगा, आपका हिंदी के प्रचार – प्रसार के लिए किया गया कार्य सराहनीय है । हिंदी जगत में किये गये आपके कार्यों के लिए जितनी भी प्रशंशा की जाए उतनी ही कम है । मैं आपकी इस पत्रिका को पढ़ कर इतनी प्रभावित हुई हूँ कि अति शीघ्र मैं आपकी पत्रिका का हिस्सा बनना चाहती हूँ ।

–संध्या द्विवेदी (भारत)

●●●●

'हिन्दी चेतना' से पहली बार रू–ब–रू होने का अवसर मिला आपके माध्यम से –पढ़कर बहुत अच्छा लगा – कई श्रेष्ठ रचनाकारों की रचनाएँ वो भी विभिन्न आयाम के – वाह – क्या बात है?

–श्यामल सुमन (भारत)

●●●●

हिंदी चेतना पत्रिका में जो रचनाएँ छप रही हैं, यकीनन उच्च स्तरीय होती हैं । प्रेम जनमेजय पर केंद्रित अंक तो संग्रहणीय है । मेरा साधुवाद स्वीकार करें ।

–निर्मल गुप्त (भारत)

●●●●

हिंदी चेतना का जनवरी–मार्च अंक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । पत्रिका के लिए भले ही तीन माह का इंतजार करना पड़े, पर एक ही अंक में बहुत कुछ समेट लेती है यह पत्रिका । श्याम त्रिपाठी जी का सम्पादकीय बड़ी गंभीरता से पढ़ने को बाध्य होना पड़ा । हिंदी को लेकर उन्होंने काफी सटीक कहा है । उनकी इस बात से इत्तफाक रखता हूँ कि अंग्रेजी हिंदी का स्थान ले और हिंदी पिछड़ती जाये, ऐसा भी नहीं चाहता । पाठकों के उद्गार बता रहे हैं कि हिंदी–चेतना अब सबकी चेतना बन चुकी है ।

–कृष्ण कुमार यादव
निदेशक डाक सेवाएँ, अंडमान–निकोबार पोर्टब्लेयर

●●●●

'हिंदी चेतना' के नए अंक ने मन को मोह लिया । लेख, कविता, कहानी और ग़ज़ल आदि के चुनाव से ले कर पृष्ठों की साज सज्जा तक हर आयाम पर पत्रिका श्रेष्ठ है । हिन्दी चेतना समूह को हार्दिक बधाई व आभार ।

–वीनस केशरी (भारत)

●●●●

'हिंदी चेतना' में प्रकाशित हिब्रू भाषा के बारे में लेख पढ़कर मुझे बहुत प्रसंन्नता हुई । अभी हाल ही में मैंने जब हिंदी के विकास के लिए स्थापित एक संस्था की बैठक में कहा कि हमारी कार्यवाही

तकनीकी टीम को साधुवाद

आपके द्वारा प्रेषित 'हिन्दी चेतना' का ताज़ा अंक मिला । धन्यवाद । मुझे इसमें प्रकाशित कहानियों ने सचमुच बहुत आशान्वित किया है, कई रचनाकार तो मेरे शहर बनारस के ही हैं, जो मेरी तरह ही प्रवास का दंश झेल रहे हैं या विदेशी धरती पर सृजन के पौधे लगा रहे हैं । बनारस का कोई विकल्प नहीं है । मैं देश मे रहकर भी यदि प्रवासी जीवन जी रहा हूँ तो सिर्फ इसलिए कि १९८० के बाद मुझे १८ साल तक कलकत्ता और १३ साल देहरादून में रहना पड़ा है । ये दोनों शहर भी मुझ जैसे साहित्यिक रुचि के प्राणियों के लिए अत्यन्त उपयुक्त नगर हैं, मगर बनारस का मन जितना विशाल है, उतना इन नगरों का नहीं । इस विशेषता को वही समझ सकते हैं, जो बनारस रहने के बाद दूसरी जगह जाते हैं या जाने के लिए बाध्य होते हैं । यह बात मैने प्रसंगवश कह दी है ।

इस अंक की कहानियों के अलावा कुछ कविताओं ने भी अन्दर तक छुआ । सबसे अधिक प्रभावित मुझे पत्रिका की तकनीकी प्रस्तुति ने किया । हिन्दी में इतनी अच्छी प्रस्तुति पहली बार मुझे देखने को मिली । इसके लिए आपकी तकनीकी टीम को साधुवाद ।

मुझे इस अंक में गीतों का अभाव दिखा । शायद वे भेजते ही न हों । हिन्दी गीतकारों की बिरादरी आलसी भी है और अन्तर्जाल की दुनिया से कोसों दूर भी ।

-डॉ.बुद्धिनाथ मिश्र

अध्यक्ष,
स्वयंप्रभा
(holistic center for language and literature)
5/२ वसन्त विहार एन्क्लेव,
देहरादून-248006
मोबाइल: 9412992244

हिंदी में होनी चाहिए तो मुझ से कहा गया कि इस मामले में हमें ''फनैटिक'' नहीं होना चाहिये । लगभग सभी लोग अंग्रेज़ी ही बोल रहे थे । मैंने अपने अमरीकी सहकर्मियों को भाषा के मामले भारतीयों से कहीं अधिक प्रतिबद्ध पाया है । मैं पिछले १५ साल से बच्चों को हिंदी पढ़ा रहा हूँ । हिंदी भाषियों के बीच हिंदी बोलने का प्रयत्न करता हूँ तो लोग अक्सर बगलें झाँकने लगते हैं और एक बार तो एक सज्जन ने मुझसे कह भी दिया कि आपको इस मुल्क में रहते ४५ साल होने को आए हैं और आपने अभी तक अंग्रेजी नहीं सीखी ?

मैं लेखक से पूरी तरह सहमत हूँ कि हमें अपने भीतर झाँकना चाहिए और इस जीती जागती भाषा को जीवित और जागृत रखने के लिए बेन यहूदा से प्रेरणा लेनी चाहिए । आपका लेख हिंदी की सभी पत्रिकाओं में प्रकाशित होना चाहिए ।

-रमेश शौनक (डरहम, नार्थ कैरोलिना)

●●●●

'हिन्दी चेतना' के जनवरी-मार्च अंक से आपने नये वर्ष की शुरुआत बहुत धमाके से कर दी। विदेश में रहकर इस स्तर की साहित्यिक-पत्रिका निकाल पाना, लगन और श्रम के अलावा प्रतिबद्धता की भी मांग करता है । बहुत कुछ कहना चाहता हूँ पर लिख नहीं पा रहा, विचार उलझ गए हैं । जो कहना चाहता हूँ, उस पर कभी एक लेख लिख कर भेजूंगा । लगता है हिन्दी विदेशों में अधिक सुरक्षित है । अपने देश में तो बस बातें ही होती हैं, उस के विकास के लिए कुछ नहीं सोचा जाता । हिंदी के घर में अंग्रेज़ रहने लगे हैं और आप अंग्रेज़ों को हिंदी पढ़ा रहे हैं, बधाई ।

-पंकज गौतम (भारत)

●●●●

आप के संपादन में 'हिन्दी चेतना' का यह नूतन अंक एक यादगार अंक बन गया है । बेहतरीन अंक, अपनी प्रस्तुति से ही बरबस अपनी ओर खींच लेता है । कुशल संपादन के लिए ललित कामनाएँ ।

-डॉ. ललित लालित्य (भारत)

●●●●

बहुत सुन्दर...पहला शब्द आपकी हिन्दी चेतना देखने के बाद । रामेश्वर जी का इंटरव्यू कमाल का है । शैल जी की और पूर्णिमा जी की कविताएँ बहुत खूबसूरत हैं...अचला जी पर लेख देकर पत्रिका ने एक शानदार काम किया है । इस शानदार मैगज़ीन के लिए हिंदी चेतना की पूरी टीम को लाख -लाख बधाई ।

-नीरज मित्तल
भावना प्रकाशन, दिल्ली

●●●●

नेट पर 'हिन्दी चेतना' पत्रिका पढ़ी, जान कर अच्छा लगा कि अमेरिका एवं कैनेडा में रह रहे भारतवासी, भारत एवं हिन्दी को समृद्ध करने में सक्रिय योगदान दे रहे हैं । पत्रिका की टीम को शुभ कामनाएँ ।

-शरद चन्द्र गौड़ (भारत)

●●●●

हर बार की तरह पत्रिका अति रोचक एवं ज्ञानवर्धक है । पत्रिका में लघु कथाएँ बहुत ही मनभावन लगीं । कविताओं में जीवन के कई रंग देखने को मिले । पत्रिका में भिन्न-भिन्न रसों की कहानियों का संग्रह अति रुचिपूर्ण है । इन सबके चयन का श्रेय अवश्य ही सम्पादक मंडल को जाता है ।

-अदिति मजूमदार(अमेरिका)

●●●●

इन्टरनेट पर आपकी भेजी पत्रिका हिन्दी-चेतना मिली । तबीयत खुश हो गयी । कितना परिश्रम किया होगा आपने ! हिन्दी चेतना मर्म को स्पर्श करती है तथा प्रवासी हिन्दी प्रेमियों को अपनी मिट्टी की याद दिलाती है । आपके प्रयत्न से पश्चिमी देशों में रहनेवाले भारत-मूल के लोगों को हिन्दी में लिखने के लिए प्रोत्साहन मिल रहा है, यह बहुत बड़ी बात है । आपका कार्य स्तुत्य है । मैं उन सभी लेखकों, कहानीकारों, कवियों का अभिनन्दन करता हूँ, जो आपकी पत्रिका की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

-नरेन्द्र कुमार सिन्हा (भारत)

●●●●

धन्यवाद । आपका आख़िरी पन्ना बहुत कुछ कह गया। उपनिषद का एक मंत्र है कि गुरु ने उपनिषद कहना समाप्त किया तो एक शिष्य ने कहा कि गुरुदेव उपनिषद कहिए । गुरु ने उत्तर दिया कि मैं अब तक उपनिषद ही कह रहा था किंतु तुम्हारी समझ में नहीं आया क्योंकि उपनिषद को समझने के लिए थोड़ी तपस्या, थोड़ा वैराग्य, थोड़ी परिपक्वता तथा कुछ और गुण चाहिए । मुझे लगता है कि हमारे नव-लेखक को ही नहीं, कुछ वृद्ध लेखकों को भी इस मंत्र का पाठ करना चाहिए ।

-नरेन्द्र कोहली (भारत)

●●●●

कहानियाँ, कविताएँ सब कुछ बहुत सुन्दर । भाई हिमांशु जी का इंटरव्यू पढ़ा, उसका तो जवाब ही नहीं । आख़िरी पन्ने पर जो कहा गया, वह भी बहुत प्रभावी है । आप को और आप की टीम को बहुत -बहुत बधाई, अंक बहुत बढ़िया बना है ।

-रचना श्रीवास्तव (अमेरिका)

●●●●

आप द्वारा प्रेषित ईमेल मिला । प्रथम लिंक से प्रथम उर्जा वान कविता को पढ़ने से दिन का शुभारम्भ सा हुआ, ऐसा कह सकता हूँ ! और इस अच्छी शुरुआत के लिए मैं आप को साधुवाद देता हूँ ! उम्मीद करता हूँ, भविष्य में आप इस चेतना को और चेतनता प्रदान करेंगे अपनी कलम की पेनी धार से..।

-योगेन्द्र कुमार पुरोहित, बीकानेर

●●●●

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी के द्वारा जो कुछ हिंदी चेतना के बारे में कहा गया, वह सच है । त्रिपाठी जी और उनकी टीम बहुत निष्ठा के साथ साहित्य सेवा कर रहे हैं । बधाई के पात्र हैं । हिमांशु जी को भी बधाई ।

-सुरेश यादव (भारत)

●●●●

नए साल का आरम्भ आपकी कृपा से बेहद अच्छा हुआ, कारण कि एक बहुत सुन्दर पत्रिका पढ़ने को मिली । अब तक अंतरजाल पर जितनी भी पत्रिकाएँ आई हैं, उनमें सबसे अधिक सुन्दर प्रस्तुति हिंदी चेतना की है । सामग्री का तो कहना ही क्या । आपकी पूरी टीम को मेरा अभिनन्दन एवं धन्यवाद । अंतिम पृष्ठ पर आपका हस्ताक्षर एकदम मनोहारी रहा, इसमें सम्पादक की नतमस्तक संचेतना सराहनीय लगी । अधिकतर लोग अपने को उद्घोषित करते हुए प्रविष्ट होते हैं । बनी रहिये । वृहत्तर भारतीय साहित्य आपके हाथों में फले-फूले ।

-कादम्बरी मेहरा (यूके)

●●●●

नया रंगरूप पसंद आया, पत्रिका बहुत अच्छी लगी विशेष रूप से डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री का लेख संकल्प का बल बहुत प्रेरणा दायक है । इसे बाद में मैं अभिव्यक्ति में प्रकाशित करना चाहूँगी।

इसी प्रकार यह पत्रिका उन्नति करती रहे यही मंकलकामना है ।

-पूर्णिमा वर्मन (शारजाह)

●●●●

हिंदी चेतना का जनवरी -मार्च २०१२ अंक अंतर्जाल पर दृष्टिगत हुआ । आवरण चित्र पर अभिनव शुक्ल की लिखी कविता सटीक है । पीले पत्तों के बीच छिपी खिलने की आकांक्षा सिर उठा रही है । चल रही है । मंजिल पाना है ध्येय अगर तो चलने का साहस रखो । तारा बनने की इच्छा है तो जलने का साहस रखो ।

चित्रकार कवि को बधाई । आवरण पृष्ठ विशेष मनोहारी है ।

विवरणिका सूची अवलोकित की । संपादन में अमेरिका, कनाडा, भारत तीनों देशों के विद्वानों का कुशल मेधा चित्रण है, जो निश्चय ही पत्रिका को एक विशिष्ट आत्मिक कलेवर प्रदान करता है ।

सम्पादकीय में श्याम त्रिपाठी जी ने हिंदी के प्रति हिंदीभाषियों की उदासीनता पर गहरी चिंता व्यक्त की है । साहित्य अकादमियों की अंग्रेज़ी लोलुपता पर कटाक्ष किये हैं । हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी शुभकामनायें व्यक्त की हैं । उद्गार में सुधि पाठकों के प्रेम जनमेजय अंक पर उत्कृष्ट विचार पढ़ने को मिले कि दिल ने कहा -काश ! मेरे पास भी यह मुद्रित अंक होता । शोधार्थियों के लिए प्रेम जी पर यह अंक मील का पत्थर साबित होगा । विश्व के कोने-कोने से श्रेष्ठ लेखकों ने इस अंक पर अपनी लेखनी को श्रम दिया है ।

साक्षात्कार में रामेश्वरम काम्बोज हिमांशु जी से हिंदी गद्य विधा लघुकथा, व्यंग्य के अतिरिक्त जापानी काव्य विधा हाइकु व तांका पर भी चर्चा हुई । हिमांशु जी काव्य में भाव को प्राणरूप मानते हैं जिसके अभाव में कविता निष्प्राण देह सी हो जाती है । लघुकथा लेखन को वे चुनौती से कम नहीं आँकते । भाषिक व वैचारिक संश्लिष्टता के बिना लघुकथा लेखन सम्भव नहीं । शत प्रतिशत सत्य उद्घाटित किया है हिमांशु जी ने । तथाकथित लेखकों को भी आड़े हाथों लिया है उन्होंने । लघुकथा लेखन में आवश्यक तत्व भी सुझाये है प्रतिष्ठित व्यक्तित्व ने । अच्छे साहित्यकार के लिए रचनाधर्मिता विशेष जरूरी है ।

कहानी के अंतर्गत - शैल अग्रवाल की - 'आम आदमी' मर्म पर चोट करती कहानी है । आम आदमी की असलियत बयान करती है । सार्थक कथन द्रष्टव्य है 'बस चारों तरफ से आते शब्दों के पक्षी उसके कानों के आसपास चोंच मरकर उसे लहूलुहान कर रहे थे ।' सरल, सहज शब्दों में व्यक्त यथा तथा मुहावरों की कसावट के कलेवर में सुशोभित 'आम आदमी' की कहानी सजीव हो मुखरित हो उठी है । यही लेखन की चुनौती है । लेखिका को साधुवाद ।

सुमन सारस्वत की - डोंट टेल टू आंद्रे - में प्रकृति दर्शन के साथ यह भी अवगत करवाया है कि male dominates everywhere .

'गुल्ली डंडा और सियासतदारी ' में डॉ. मनोज श्रीवास्तव जी ने समाज में राजनीति की पैठ का भंडाफोड़ किया है । हर जगह राजनीति ही सर्वोपरि है।

उसका पत्र- में भावना सक्सेना ने रिसते रिश्तों को दर्द की अभिव्यक्ति में परिभाषित करने का दर्दनाक प्रयास किया है । भावना सक्सेना ने अपनी कहानी में दर्द की दार्शनिकता में पैठ गहन अनुभूति को रूपायित किया है सशक्त, सहज भाषिक कलेवर में ।

'दृष्टिकोण में संकल्प का बल' डॉ. रविन्द्र

अग्निहोत्री जी ने हिंदी भाषा के प्रयोग पर बल देते हुए हिब्रू भाषी व्यक्तित्व का उदाहरण पेश किया है।

आसिफ खान, भानु चौहान ने सुधा ओम ढींगरा जी के कहानी संग्रह 'कौन सी ज़मीन अपनी' पर शोध विचार व्यक्त किये हैं । मूल्यों की निरर्थकता, मूल्य अवघटन, स्त्री के अधिकार, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था, भारतीय व प्रवासी संस्कार आदि अनेकानेक विषयों पर उनकी लेखनी ने भरपूर मेहनत कर रंगीला रंग दिखाया है । लेखक पंकज सुबीर के शब्दों में 'उनकी कहानियाँ मौन क्रांति का दस्तावेज हैं ।'

गज़लों में - देवी नागरानी, नीरज गोस्वामी, राजीव भारोल तथा कविता में अनीता कपूर, पूर्णिमा वर्मन , रमेश मित्तल, पंकज त्रिवेदी, प्रतिभा सक्सेना, दीपाली सांगवान, रश्मि प्रभा, स्वर्ण ज्योति, जीतेन्द्र जौहर जी ने अनेकानेक भावाभिव्यक्ति से काव्य कैनवास को कुशलता से चित्रित किया है ।

जापानी विधा-तांका- में डॉ. भावना कुँअर, डॉ. हरदीप कौर संधु ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति प्रदान की है ।

लघुकथा में दीपक मशाल की जिजीविषा, विवशता- सुमन कुमार घई व बूढ़ा रिक्शेवाला डॉ. श्याम सुन्दर दीप्ती की लघुकथाएँ मर्मस्पर्शी हैं । सुगठित वाक्य-विन्यास, अल्प शब्दों के परिधान में छुपी भावात्मा को स्पष्ट व सार्थक अभिव्यक्ति दे मुखरित किया ।

'विश्व के आँचल से' डॉ. अचला शर्मा का कथा संसार पर रिपोर्ट पेश की है विजय शर्मा ने । बकौल उनके 'उनकी कहानियों में चाक्षुष संवेदना के साथ-साथ घ्राण, स्पर्श, श्रवण संवेदना परिलक्षित होती है । नस्ल, संस्कृति, इतिहास अचला शर्मा के लेखन में प्रमुख कारक हैं ।' विजय शर्मा ने डॉ. अचला शर्मा की कहानी संकलन पर इतनी विषद, गहन, स्पष्ट, सजीव, सरल, बोल्ड व्याख्या दी है कि उनकी कहानियां मूर्त रूप में सामने खड़ी हो जाती हैं ।

पुस्तक समीक्षा 'वेयर डू आई बिलोंग'- अर्चना पेन्यूली-समीक्षा में विजय सती ने 'घटनापूर्ण और पात्र बहुल उपन्यास' शीर्षक के अंतर्गत उद्घाटित किया है कि लेखिका के पात्र विदेश में रहते हुए भी अपनी संस्कृति व संस्कार नहीं छोड़ पाते ।

पुस्तकें जो हमें मिली- में अनेक पुस्तकों को रंग-बिरंगे परिधानों में अवतरित किया है ।

साहित्यिक समाचार में हिंदी चेतना के प्रेम जनमेजय अंक के लोकार्पण भारत व कनाडा में का हुबहू चित्रण है ।

कब्र का मुनाफा- तेजेंद्र शर्मा , रचना समय पत्रिका - भोपाल, ज्योति जैन का मेरे हिस्से का आकाश आदि के लोकार्पण समाचार संगृहीत हैं ।

भाषांतर, नवांकुर, अधेड़ उम्र में थामी कलम, विलोम काव्य चित्रशाला आदि सभी स्थाई स्तम्भ रुचिकर व विचारप्रवाही हैं ।

आख़िरी पन्ना में सुधा ओम ढींगरा जी नए उत्साही रचनाकारों को सीख देती हैं 'प्रशंसा से प्रभावित नहीं होना।' वे लेखन को तपस्या बताती हैं ।

संपूर्ण पत्रिका में आवरण प्रष्ठ सहित नयनाभिराम साज-सज्जा, सवाक चित्र, चुनी हुई प्रशंसनीय रचनाएँ , मनोहारी प्रस्तुति है । किसी भी पृष्ठ को पढ़ने का मोह छूट नहीं पता । बोलते चित्रों से रचनाएँ और मुखर हो उठी हैं ।

इतने कुशल व अभिव्यक्तिपूर्ण संपादन को सलाम ।

-शोभा रस्तोगी शोभा (भारत)

●●●●

''प्रेम जनमेजय विशेषांक'' ने तो जैसे सम्मोहन मंत्र ही फूँक दिया। उसे पढ़ना छोड़ नहीं पा रही हूँ । आपने चुन- चुन कर वरिष्ठ एवं मूर्धन्य साहित्यकारों को जोड़ने में कितना परिश्रम किया होगा, उसका अनुमान मैं लगा रही हूँ । इस सुन्दर विशेषांक ने मुझे अभिभूत कर दिया है। अन्य दोनों पत्रिकाएँ भी मनोरम हैं।

''हिन्दी चेतना'' तो आप भेजती रही हैं , अन्तर्जाल पर पढ़ती भी रही हूँ । किन्तु खेद है कि आज तक आपको कभी कुछ लिखा नहीं । आज इसके आकर्षक रूप और पठनीय उत्कृष्ट कहानी, कविता और समीक्षाओं ने विशेष रूप से प्रभावित भी किया और आह्लादित भी। सभी सामग्री ज्ञानवर्धक है ।

आपके साहित्य-सृजन एवं सम्पादन-कौशल की प्रशंसा कैसे करूँ? आपकी एकनिष्ठ साहित्य-साधना और लेखनी को नमन !!!

समस्त शुभकामनाओं सहित,

'हिन्दी चेतना' के लिए

जन्मी तू विदेश में,
स्वदेश से प्रीति लगाई।
भारत की संस्कृति की.
यहाँ ध्वजा फहराई ।
विदेश में हिन्दी की,
तूने ज्योति जलाई ।
जन-जन में तूने ही
युग-''चेतना'' जगाई।
यशस्विनी चिरायु हो,
शतशः तुझे बधाई॥

-शकुन्तला बहादुर (अमेरिका)

●●●●

''हिंदी चेतना'' का जनवरी-मार्च अंक प्राप्त हुआ । अपने सम्पादकीय में आदरणीय त्रिपाठीजी ने भारत में हिंदी भाषा के प्रति जिस उदासीनता के भाव का उल्लेख किया है, इस की पीड़ा और क्षोभ से हम सब हिंदी प्रेमी संतप्त हैं । और इस संदर्भ में विदेश में ऐसी स्तरीय पत्रिका के माध्यम से हिंदी प्रेमियों को विश्व के विभिन्न देशों में बसे हुए रचनाकारों की रचनाओं से परिचित कराना कोई आसान कार्य नहीं है । इतने सारे लेख-आलेख, कहानी, लघुकथा और कविताओं को समेटे हुए यह पत्रिका हर पाठक की साहित्यिक क्षुधा को संतुष्ट करती है । इस के लिए आपकी पूरी टीम को साधुवाद ।

आख़िरी पन्ने की एक बात बहुत भायी, ''लेखन के लिए समर्पण और अनुशासन की बहुत आवश्यकता है / प्रशंसा अहं को बढ़ा न दे इससे सतर्क रहना चाहिए'' । यह बातें हर लिखने वाले के लिए गुरुमंत्र के सामान हैं । इस नए वर्ष में हिंदी चेतना के लिए अशेष शुभ कामनाएँ ।

-शशि पाधा (अमेरिका)

●●●●

हिन्दी चेतना का जनवरी -मार्च अंक पढ़ा, क्या पत्रिका है, इसके सभी अंक पढ़ना चाहता हूँ, काम्बोज जी का साक्षात्कार काफी ज्ञानवर्धक रहा । उन्होंने ठीक ही कहा है कि काव्यानुभूति के

अभाव में काव्य की रचना नहीं हो सकती । शैल अग्रवाल की कहानी 'आम आदमी' रुचिकर लगी । इसमें वाराणसी की महक मिली, एक आम आदमी इससे ज़्यादा कर भी तो नही सकता । लेखिका ने आम आदमी का दर्द ठीक ही उकेरा है ..'डोंट टेल टू आंद्रे' में सुमन जी ने गोवा की सैर करा दी है, सत्य ही है कि घर गृहस्थी के चक्कर में औरतें ज़्यादा ही समझदार हो जाती हैं, तथा सभी औरतें एक जैसी ही हैं, उनकी समस्याएँ एक हैं, केवल देश बदल जाता है.. 'गुल्ली डंडा और सियासतदारी' भारतीय राजनीति का एक सटीक दस्तावेज़ है । लेखक ने सत्य ही कहा है कि राजनीति में कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्बल ब्राह्मण भी शूद्र की तरह दलन का शिकार होता है....भावना सक्सेना की कहानी 'उसका पत्र' भी गहरा प्रभाव छोड़ती है...।

हमारे भारत में खाने के अंत में कुछ मीठा खाने का रिवाज़ है, उसी तरह से आपकी पत्रिका में सबसे अंत में आपका आख़िरी पन्ना पढ़कर कुछ मीठा का एहसास हुआ । आपने नए कथाकारों के लिए एक दिशा सूत्र दिया है, जिसे अपना कर वे श्रेष्ठ बन सकते हैं । आपका कथन प्रशंसा अहम् ना बन जाए, यह सूत्र वाक्य है हमारे लिए भी । आपकी पत्रिका पढ़ते हुए मैं खो गया था । श्रेष्ठ सम्पादन, कथा- कहानी चयन के लिए आपको बधाई हो ।

एक आग्रह – प्रेम जन्मेजय विशेषांक पढ़ना चाहता हूँ....।

सादर

-रवि (भारत)

●●●●

प्रेम जनमेजय पर आधारित हिंदी चेतना का अक्टूबर अंक देखा, पढ़ा और समझने का प्रयास किया कि इस अंक को इतना अलग प्रेम जनमेजय जी ने बनाया या हिंदी चेतना ने प्रेम जनमेजय को यह विशिष्टता दी । बात कैसी भी रही हो पर छुरी खरबूजे पर पड़े या खरबूजा छुरी पर, हलाल तो दोनों ही होंगे । और हुए भी । यह नहीं कि पहले इन का वजूद नहीं था । दोनों का था पर कभी सूरजमुखी खिलता और कभी नहीं भी । ऐसा ही कुछ हुआ कि अचानक दोनों इतनी चर्चा में आ गये कि जो सूरजमुखी देख कर लोग निकल जाते थे वह हाथ में लेकर सूंघने लगे और सराहने लगे । यही होता है जब एक दिन हम उठते हैं और देखते हैं कि हमारे आस-पास दुनिया बदल गई है क्योंकि कुछ ऐसा होता है जो पहले नहीं हुआ होता । इस लिए पहले तो दोनों पक्षों को ढेर सारी बधाई ।

मैं अपनी बात कहती हूँ कि इस से पहले मैं प्रेम जनमेजय जी को नहीं जानती थी, बस नाम जानती थी, यहाँ -वहाँ सुने हुए नाम जैसा । इस में प्रेम जी के लेखन की कमी नहीं है । कमी है तो मेरे देश से दूर हो जाने की । उस समय से हूँ जब अमरीका में हवा भी नहीं लगती थी कि भारत में, घर-घर में, कलात्मक -क्षेत्रों में क्या हो रहा है ।

आज से तीस वर्ष पहले की गतिविधियों को छोड़ कर (तब तक अभी साहित्यिक उठापटक क्या होती है इस की समझ ही नहीं थी) केवल लिखने का एक फ़तूर था जो यहाँ आकर हवा हो गया । फिर वहाँ कौन पनपा, कौन उजड़ा, किस की कलगी बुलंदियों पर है और किस की खटिया खड़ी की जा रही है कुछ पता नहीं लगा और आज भी नहीं है । धर्मयुग और सारिका कुछ साल खुले दरवाज़े रहे फिर वह भी बंद हो गये ।

उस पर मुझे मानने में कोई संकोच नहीं कि व्यंग्य -हास्य के काव्य या साहित्य में मेरी कोई रुचि नहीं रही । व्यंग्य और हास्य के बीच की विभाजन रेखा को भी कभी नहीं समझा । इस अंक को पढ़ कर जैसे आँखों से एक नासमझी का पर्दा हटा । पहली बार जाना कि व्यंग्यकार भी इतना गम्भीर, जिंदादिल, प्रबुद्ध और इतना मानवीय साहित्यकार हो सकता है ।

व्यंग्य भी एक बड़ी साधना का प्रतिफलन है । उस के पीछे का तीखापन, आवेग, भावों की प्रवणता और प्रवाह अपने आप में कितना -सतसैया के दोहरा ज्यों नावक के तीर की तरह अपना दाँव खेल सकता हैं । यह पता चला । उन पर उन के मित्रों द्वारा लिखे आलेखों से मालूम होता है कि प्रेम जी ने कितनों के दिलों को छुआ है ।

प्रेम जनमेजय जी के भव्य व्यक्तित्व और व्यंग्य को मेरा प्रणाम । यों अभी भी मैं व्यंग्य साहित्य के विषय में पूर्णतय ढोल-गँवार ही हूँ ।

-सुदर्शन प्रियदर्शिनी (अमेरिका)

●●●●

प्रेम जनमेजय विशेषांक पर

हाथ में जब आती है 'हिंदी चेतना',
जगा देती है मन में एक नई चेतना ।
अपनी भाषा के प्रति प्रेम की चेतना,
विधाओं से पूर्ण रहती है 'हिंदी चेतना'।
हर अंक में होती है कुछ विशेषता,
नई सजधज और नई साज सज्जा ।
प्रेम जनमेजय विशेषांक जब से हाथ आया,
दो बार आद्योपांत पढ़ने से मन नहीं अघाया ।
नाम में है कुछ विशेषता.....
जनमेजय नाम कई बार याद है आया ।
द्वापर में जनमेजय ने किया था नागों का यज्ञ,
प्रेम से, सद्भावना से,
व्यंग्योक्ति के तीखे वाणों से,
आज के जनमेजय कर रहे हैं
साहित्य में व्यंग्य का यज्ञ ।
जीत लिया है प्रतिद्वंदियों को धैर्य की तलवार से,
प्रजातन्त्र के तन्त्र की सूझ- बूझ की
अनोखी धार से ।
सामाजिक कुरीतियों पर करते हैं चोट गहरी,
वाणी में सरस्वती वास, कलम की धार पैनी ।
सर पर व्यंग्य यात्राओं का है ताज,
हृदय में जीता है व्यंग्य का ही संसार ।
भव्य, आकर्षक व्यक्तित्व के हैं स्वामी,
चेहरे पर मंद मुस्कान, व्यक्तित्व है स्वाभिमानी ।
संसार के परखने की अलग नज़र है इनकी,
साहित्य सृजन की,
सम्पादक की यात्रा हैं लम्बी इनकी ।
जो भी प्रेम जनमेजय के सम्पर्क में है आया,
उनके स्नेह आदर का प्रतिदान है पाया ।
घर परिवार हो, या हों बन्धु बांधव,
जनमेजय ने प्रेम से अपना दायित्व है निभाया
नाम कर रहे सार्थक प्रेम से जन मन विजय कर
उनकी दीर्घ आयु और उत्तम स्वास्थ्य के लिए
मेरी शुभकामनाएँ ।
'हिंदी चेतना' का प्रेम जनमेजय विशेषांक
प्रकाशित कर के सम्पादक श्याम त्रिपाठी जी एवं
सुधा ढींगरा जी ने प्रशंसनीय कार्य किया है ।
पत्रिका की आशातीत सफलता के लिए हार्दिक
बधाई एवं सभी कार्यकर्ताओं को अभिनन्दन ।

-राजकुमारी सिन्हा (अमेरिका)

●●●●

'प्रेम जनमेजय विशेषांक' सदैव याद किया जाएगा

'हिंदी चेतना' पत्रिका मिली । आभार प्रकट करता हूँ । सोचता हूँ कि किसी भी रचनाकार का अनूठापन देखना हो तो उस पर विशेषांक एक सटीक उपक्रम है । प्रेम जी आपसे मिलने के बहुत कम अवसर मिले और सच्चाई यह है कि आपके सृजन कर्म से भी पर्याप्त परिचित नहीं हुआ । लेकिन इस पत्रिका में आपके बारे में प्रसिद्ध साहित्यकारों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन कर आल्हादित हुआ हूँ । व्यंग्य के क्षेत्र में मुख्य महारथियों के निधन के बाद जो वेक्यूम बना था, उसको न केवल आप जैसे लेखकों ने पूरित किया बल्कि नित्य नए विषयों पर अपनी प्रतिभा की धाक जमाई है । 'हिंदी चेतना' का चयन समयोचित ही कहा जाएगा, क्योंकि व्यंग्य के क्षेत्र में आपने रचनाओं द्वारा और 'व्यंग्य यात्रा' के माध्यम से नए कीर्तिमानों का निमार्ण किया है ।

विद्यार्थी जीवन में गुरु-शिष्य परम्परा को सार्थक करते हुए आपने श्री नरेन्द्र कोहली जैसे प्राध्यापकों की बाँह पकड़ी और किन्हीं विचारों में मतभेद होते हुए भी निरंतर उनका साथ अब भी निभाते जा रहे हैं । कोहली जी का आलेख भावनाओं से पूरित है । सम्बन्ध अपनी जगह-आत्मीयता का स्थान अपना है । अच्छा पिता कभी भी संतान के पीढ़ीगत मतभेदों को अहम् के स्तर पर नहीं लाता । ऐसे गुरु ऐसे शिष्य पाकर गौरान्वित क्यों न हों ।

श्री हरीश नवल जी से आपके सम्बन्ध कैसे है- साहित्य संसार इस से परिचित है- एक दूसरे के पूरक और अभिन्न । पारिवारिक सम्बन्ध भी आपकी मित्रता के संबल हैं । ऐसी दोस्ती को कुछ देर के लिए विराम भी मिला लेकिन आप पुन: सुख दु:ख के साथी बने-आपके शुभ चिन्तकों को कितना अच्छा लगा होगा: प्रेम जी आप इसका अनुमान नहीं लगा सकते ।

अशोक चक्रधर ने लाइफ के सुनहरे दिनों को याद किया है, जब 'प्रगति' नाम की संस्था में आप लोग सक्रिय थे और दूसरे खेमे में आपके अन्य मित्र । वैचारिक मतभेद होते हुए भी आपने समन्यवादी सोच को बरक़रार रखा और आजतक इस गुण को निभाते जा रहे हैं । व्यंग्य यात्रा में सभी मान्यताओं का सम्मान होता है- विचारधारा के आधार पर कोई अस्पृश्य नहीं ।

डॉ. अजय अनुरागी द्वारा आपकी रचनाओं की आलोचना ने इस विधा को चार चाँद लगाये हैं । आलोचना में भी इतना सरस काव्य हो सकता है, मैं इससे अनभिज्ञ था । उनका आलेख पढ़कर आपकी रचनाएँ पढ़ने को मन करने लगा है । डॉ. प्रताप सहगल ने आपके नाटकों की प्रशंसा करते हुए किन्तु-परन्तु को स्थान हुए कुछ सद सुझाव दिए हैं- हो सकता है, कुछ लोगों को ऐसी आलोचना भाती न हो, परन्तु मुझे सब अच्छा लगा- एक शुभचिंतक की बात क्या कभी चुभती है ?

आपके परम मित्र ज्ञान चतुर्वेदी ने आपकी रचनाओं में हास्य की कमी को उजागर किया है -किसी हद तक मैं भी इससे सहमत हूँ । पत्रिका के कवर पर आपकी फोटो से अनुमान लगाया जा सकता है कि आप कितने हंसमुख और उदार दिल होंगे ।

सूर्यबाला जी की रचनाओं के माध्यम से अनुमान लगा सकता हूँ कि वे पारदर्शी हृदय की स्वामिनी है-वे लिखती हैं :बड़ों के लिए एक अकृत्रिम सम्मान भाव और छोटों के लिए स्नेह संरक्षण का विश्वसनीय सबल । आत्मविश्वास प्रेम की सबसे बड़ी पूँजी है । मैंने कभी उन्हें उत्तेजित होते नहीं देखा, न बेवजह की बहस बाजी में रुचि लेते । जो भी कहना होगा, धैर्यपूर्वक कहेंगें और जितना कहेंगें उससे ज़्यादा सुनेंगे और अपनी बात को बिना उग्र हुए पूरी तरह स्पष्ट कर जाएँगे ।

आपकी छवि का कितना स्पष्ट चित्रण है ।

जहाँ तक व्यंग्य विधा है या शैली- 'तट की खोज' में आपने इस विषय को सार्वजनिक करते हुए लेखकों के मानस को झिंझोड़ा है और उनको अपनी राय देने के लिए उनका आह्वान किया है । भविष्य के गर्भ में क्या लिखा है-कह नहीं सकते, लेकिन आपका जनूनी प्रयास निश्चय ही इस विधा या शैली को एक सम्मानित स्थायित्व देगा, ऐसा मेरा विचार है ।

अनेक समस्याओं को आपने अपनी शैली व्यंग्य द्वारा पाठकों तक पहुँचाया है -एक राजनैतिक समस्या जिसे मैं अपने दृष्टिकोण से देखता हूँ: reservation policy आर्थिक आधार पर क्यों तय नहीं होती । परिवारवाद से भारत को कब छुटकारा मिलेगा । प्रेम जी, इस विषय पर आपकी व्यंग्य रचना की प्रतीक्षा करूँगा ।

हिन्दी चेतना में ही छपी अमित कुमार सिंह जी की कविता से इसका उपसंहार करता हूँ :-

दिल में जिनके दया का सागर
ऐसे निराले प्रेम जनमेजय जी का
हर कोई करता आदर ।

-बी. डी. बजाज (भारत)

साक्षात्कार

प्रयोगों पर अधिक ध्यान रचना का मूल समाप्त कर देता है.... एस. आर. हरनोट

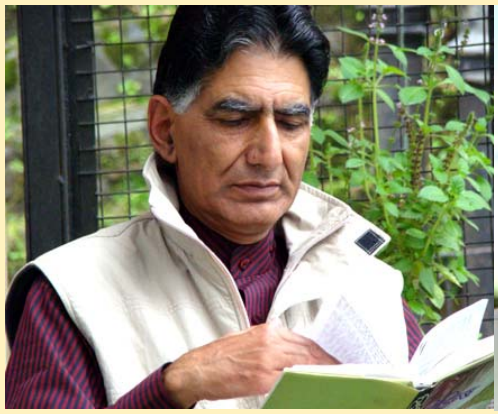

(प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार एस. आर. हरनोट से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत....)

प्रश्न : *हरनोट जी, अमिधा, लक्षणा और व्यंजना भाषा के तीन गुण माने जाते हैं, क्या आज इन तीन गुणों पर आधारित साहित्य रचा जा रहा है ...?*

उत्तर : सुधा जी! कोई भी रचना इन तीनों गुणों के बिना 'रचना' नहीं बन पाती । जिस रचना में ये गुण होंगे वह मन में घर कर लेगी । पाठक या कोई भी जब उसे पढ़ना शुरू करेगा तो उसकी लय उसे बाँधे रहेगी और आप उसे आधे में नहीं छोड़ पायेंगे । कई बार हमारे पास किसी कहानी या विधा या कविता या दूसरी विधाओं को रचने के लिए महत्वपूर्ण विषय तो होते हैं पर यदि उसे अच्छी और सहज भाषा हम न दे पायें तो उसका प्रभाव नहीं बन पाता । आज साहित्य में नये - नये प्रयोग हो रहे हैं । भाषा के स्तर पर भी । हमें रचनाओं में आज कई तरह की भाषा पढ़ने को मिल रही है । कई बार हम उसे अपनी 'विद्वता' से इतना बोझिल बना देते हैं कि अच्छा विषय अपने हाथों ही वध हो जाता है । अब एक प्रचलन इन दिनों यह भी हो गया है कि हम अंग्रेज़ी के शब्दों को अधिक से अधिक अपनी रचनाओं में ठूँसने में लगे हैं । इसके अतिरिक्त विदेशी और अपने साहित्य के इतने सन्दर्भ आ जाते हैं कि पाठकों को समझ नहीं आता कि हम क्या कहना चाहते हैं ? आपने महसूस किया होगा कि जिन रचनाओं में लोक की भाषा के शब्द सहज आ रहे हैं, वहाँ कमजोर विषय होते हुए भी वह रचना अपना प्रभाव बरकरार रख लेती है । आज पाठकों के साहित्य से दूर होने की बातें तो खूब होती हैं, लेकिन उसके कारणों को गहराई से तलाशने के प्रयास बहुत कम होते हैं । मुझे इसका एक कारण भाषा के साथ हमारा खिलवाड़ भी लगता है । प्रेमचन्द आज प्रासंगिक इसलिए हैं कि उनकी भाषा आमजन की भाषा है और उसी तरह अपनी रचनाओं में उन्होंने आमजन की ज़्यादा बात की है ।

प्रश्न : *आपने पहले - पहल साहित्यिक कलम कब उठाई ..? या ऐसे कौन से क्षण थे, जिन्होंने आपसे लिखवाना शुरू किया ।*

उत्तर : स्कूल के दिनों में मैं सांस्कृतिक आयोजनों में बढ़- चढ़ कर भाग लिया करता था । उसमें संगीत और लघु नाटक शामिल थे । बाँसुरी और शहनाई भी । हम मिलकर उस दौरान कभी कोई कविता रच देते तो कभी कोई गीत और कभी कोई एकांकी । मैं यहाँ बताना चाहूँगा कि आठवीं तक की पढ़ाई मुश्किल से पूरी कर पाया था । कारण गरीबी थी । हालाँकि पिता खेती बाड़ी करते थे, लेकिन गाँव में किसी तरह की सुविधाएँ न होने के कारण, उस खेती से घर - परिवार की ज़रूरतें भी पूरी नहीं होती थीं । आठवीं का स्कूल लगभग सात किलोमीटर दूर था और उसी तरह दसवीं के लिए तकरीबन २७-२८ किलोमीटर रोज़ आना- जाना होता था । पिता कर्ज़ के बोझ से बहुत दब गये थे, इसलिए बहुत ज़िद्द करके मैंने दसवीं तो कर ली, परन्तु आगे पढ़ने का मौका नहीं मिला और शिमला आकर दूकानों में काम के साथ नगर निगम में बेलदारी करनी पड़ी । संयोग यह हुआ कि जल्दी ही सरकारी नौकरी मिल गई । नौकरी में महसूस हुआ कि दफ्तर के 'बाबुओं' के बीच मैं एक निपट गँवार अनपढ़ आ गया हूँ । इसलिए आगे पढ़ना ज़रूरी है, लेकिन प्रश्न यह था कि नौकरी, शहर के खर्च के साथ - साथ कर्ज़ का निपटारा और घर चलाने के साथ यह सम्भव कैसे होगा ...? फिर भी हिम्मत नहीं छोड़ी । १९७५ -७६ में मैंने नौकरी के साथ बी. ए. आनर्स किया और साथ हिंदी अंग्रेजी का शार्टहैंड भी सीखा । मेरी पत्नी शीला ने शार्टहैंड के कोर्स किये थे और इसकी प्रेरणा उसी ने मुझे दी । उसने शार्टहैंड भी मुझे सिखाया । १९७७ में लिपिक की नौकरी छोड़कर हिमाचल प्रदेश पर्यटन निगम में बतौर आशुलिपिक नौकरी लग गयी । इसी दौरान पहाड़ी बोली में कविताएँ लिखनी शुरू कीं और आकाशवाणी शिमला से भी वे प्रसारित होने लगीं,

इससे ही शायद लिखने की तरफ रुझान होने लगा । साहित्य की कोई समझ नहीं थी, न घर का परिवेश इस तरह का था और न ही अपनी समझ । अब साथ- साथ ग्रेजुएशन भी नौकरी के साथ पूरी की और बाद में हिंदी में एम्. ए . भी ।

मैंने चुप रहना बेहतर समझा, हरनोट जी तन्मयता से अपनी बात कह रहे थे.....

सुधा जी, मैं कार्यालय में जिस अधिकारी के साथ काम करता था, वे अंग्रेज़ी में हिमाचल के विविध विषयों पर लेख लिखते और बड़े-बड़े अखबारों में छपते रहते । उनके सारे लेख मैं ही टाइप करता । जब उन्हें पता चला कि मैं अच्छी हिंदी जानता हूँ और हिंदी टाइप करता हूँ, तो अब वे आलेख मुझे अनुवाद करके हिंदी में भी टाइप करने पड़ते और उनके नाम से छपते रहते । मुझे लाभ यह हुआ कि मेरी रुचि अब फीचर लेखन की ओर होने लगी और मैंने विविध विषयों पर फीचर लिखने शुरू कर दिए । साथ ही पहाड़ी कविताएँ और लघु नाटक लिखने लगा । इस दौरान कई बड़े मंचन भी करवाए । मैं जहाँ- जहाँ हिमाचल की यात्राएँ करता, वहाँ से बहुत सामग्री लाता । साथ फोटोग्राफी भी करता । १९८५-१९९० तक आते फीचर लेखन में मेरा एक नाम हो गया था और शायद ही भारतवर्ष की कोई ऐसी पत्रिका होगी, जिसमें मेरे रंगीन चित्रों के साथ आलेख न छपे हों, इससे पाठकों का अपार स्नेह मुझे मिला । नौकरी के साथ यह ध्यान रखना होता कि कहीं कोई ऐसी चीज़ न छप जाए, जिसकी वजह से परेशानी का सामना करना पड़ जाए । इसलिए मन के भीतर जो गरीबी, शोषण, अन्याय, रोज़ी- रोटी के लिए संघर्ष करते आमजन के दर्द छिपे थे, वे बहुत परेशान किया करते । हालांकि इस मध्य मैंने अपने क्षेत्र के विकास के लिए काम करना भी शुरू कर दिया था, मैं विशेषकर दलितों और वंचितों के बीच जा कर उनके लिए काम करता रहता । यह उस समय होता जब दफ्तर से अवकाश होता और शायद यही कारण रहा होगा कि मेरा रुझान कहानियाँ लिखने की ओर गया । हालांकि प्रारम्भ में मैंने जो कहानियाँ लिखीं, वे दैनिक समाचार पत्रों में ही छपीं, लेकिन इसी दौरान साप्ताहिक हिन्दुस्तान के अंतिम अंक में मेरी एक कहानी 'पंजा' जब छपी तो मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा । उस अंक के बाद साप्ताहिक हिन्दुस्तान बंद भी हो गया ।

प्रश्न : *तो इस तरह आपका साहित्यिक सफ़र शुरू हुआ..... ?*

उत्तर : जी, इन्हीं दिनों मेरा सम्पर्क हिमाचल वि.वि. के प्रो. कुमार कृष्ण से हुआ और उनके साथ रहते हुए कहानियों और कविताओं को पढ़ने का कुछ मौका मिला । उस दौरान डॉ. बच्चन सिंह जी शिमला आते- जाते रहते थे जिनसे भी सीखने को बहुत कुछ मिला । प्रो. कुमार कृष्ण ने मेरी बहुत सी कहानियों में कुछ कहानियाँ छाँटीं और १९८७-१९८८ में मेरे एक साथ दो संग्रह 'पंजा' और 'आकाशबेल' प्रकाशित हो गये । लेकिन अभी भी कोई बड़ी साहित्यिक पत्रिका मुझे नहीं

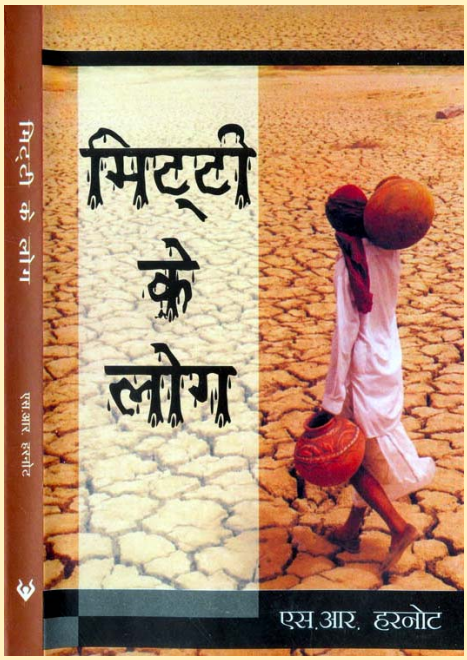

छापती थी । यहाँ तक की हिमाचल में भी नहीं । मेरी उन्हीं दिनों आदरणीय ज्ञान रंजन जी से पत्राचार के माध्यम से भेंट हुई । उनको मैंने अपने ये दोनों कहानी संग्रह भेजे और एक दिन उनका लम्बा ख़त आया, जिसमें उन्होंने लिखा था 'हरनोट मैंने तुम्हारे दोनों संग्रहों की कहानियाँ पढ़ डालीं । तुम्हारे पास निहायत कच्चा माल है, जहाँ से तुम एक बड़े लेखक की उड़ान भर सकते हो ।' और उसके बाद शायद मैं उसी 'उड़ान' की तलाश में अपने 'पंखों' को मज़बूत करने में जुट गया और आज तक प्रयत्नशील हूँ ।

प्रश्न : *हरनोट जी, अब जिज्ञासु मन यह जानना चाहता है कि आप के कच्चे माल में परिपक्वता कब आई....?*

उत्तर : सुधा जी, मेरी एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'हिमाचल के मन्दिर और उनसे जुड़ी लोक कथाएँ' वर्ष १९९१ में शिमला के एक स्थानीय प्रकाशक से छपी, तो मेरे लिखने का विश्वास और बढ़ा । इस बीच साहित्य संगम इलाहाबाद से आलोक चतुर्वेदी जी ने मेरी कहानियाँ माँगीं और मैंने उन्हें कुछ कहानियाँ दीं । उन्होंने जल्दबाजी में 'पीठ पर पहाड़' नाम से एक और कहानी संग्रह छाप दिया । लेकिन वह भी पहले संग्रहों की तरह 'कच्चे माल' से भरा था ।

१९९४ में मेरी एक पुस्तक 'यात्रा' प्रकाशित हुई, जिसमें मेरी हिमाचल के दुर्गम पहाड़ी स्थानों की यात्राएँ हैं । ये किन्नौर, लाहुल , स्पीति , चम्बा, और मणिमहेश जैसे जनजातीय क्षेत्रों पर आधारित है, जिसके पहले पाठक आदरणीय ज्ञान रंजन जी थे, जो उन दिनों शिमला आये थे । उन्होंने इसे महत्वपूर्ण पुस्तक बताया और उस पर एक आलेख भी पहल में छापा ।

इसके बाबजूद मेरी प्यास कहानियों के लिए और बढ़ी और मैं यह सपने देखने लगा कि हंस, पहल, और दूसरी बड़ी पत्रिकाओं में क्या मैं कभी छप पाऊँगा ...?

प्रश्न : *हरनोट जी, आप इन सारी पत्रिकाओं में छपे निस्संदेह कच्चे माल के साथ तो नहीं, पर इस सपने को साकार होने में कितना समय लगा..?*

उत्तर : १९९४ के अंत में मैंने कुछ कहानियाँ लिखीं, जिनमें 'बीस फुट के बापूजी ' उद्भावना के कथा महाविशेषांक में और दो अन्य कहानियाँ 'मिस्त्री' और 'कागभाखा' क्रमशः वागर्थ और शिखर में प्रकाशित हुईं । इनकी चर्चा होने लगी और अचानक एक दिन ज्ञान रंजन जी के पत्र ने चौंका दिया । जिसमें लिखा था कि 'हरनोट अपनी कोई कहानी पहल के लिए तत्काल भेजो ।' मेरी ख़ुशी का ठिकाना न था, परन्तु उनकी सीख 'बेहद कच्चे माल' की याद थी । कुछ दिन सोचने में लगे, इस बीच मैंने एक छोटा सा हिंदी का टाइप राइटर लोन पर ले लिया था और मेरा लिखना उसी पर चलता था । मेरे मन में उस दौरान माँ को लेकर एक कहानी चल रही थी और मैंने 'बिल्लियाँ बतियाती हैं' शीर्षक से इसे एक सप्ताह में पूरा

किया । लम्बी कहानी बनी । इसके दो ड्राफ्ट बनाए और ज्ञान जी को भेज दिए । एक सप्ताह में कहानी लौट आई, इस टिप्पणी के साथ कि 'हरनोट तुम्हारी यही कहानी पहल में जायेगी, पर इसमें पहाड़ी बोली के संवाद ज़्यादा हो रहे हैं, उन्हें कम करो ।' कहानी दोबारा टाइप हुई । भेजी तो स्वीकृति मिली और १९९५ में यह जब पहल में प्रकाशित हुई तो इसे बेहद पसंद किया गया । यह कहानी जैसे माँ का आशीर्वाद थी । जिसके बाद हंस ने कहानी माँगी और मैंने दारोश कहानी उन्हें भेजी । अब सिलसिला बड़ी पत्रिकाओं में छपने का शुरू हो गया था और मैंने केवल कहानी विधा पर अपने को एकाग्र कर लिया था । १९९५ से २००० तक जो कहानियाँ देश की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं, वे जब 'दारोश' कहानी संग्रह के रूप में आधार प्रकाशन से आईं तो लगा कि मैं अब कहानियाँ लिख सकता हूँ । सही मायनों में यहीं से कहानी लेखन का प्रारम्भ भी हुआ ।

प्रश्न : *आपकी रचनाओं के लिए सामान्यत: आपकी प्रेरणा भूमि क्या रही है ? उनमें निजता का दखल कितना और कहाँ तक है ?*

उत्तर : मेरे लिए विशेष रूप से मेरी अम्मा मेरी प्रेरणा रही हैं । साथ मेरा वह पिछड़ा गाँव जहाँ आज़ादी के ४५ वर्ष बाद पीने का पानी और सड़क इत्यादि जन साधारण की सुविधाएँ पहुँच पाईं । वे / वंचित आमजन जो सुबह से शाम तक दो जून रोटी के लिए कड़ा संघर्ष करते रहे / आज भी कर रहे हैं और साथ अपने अधिकारों के लिए लड़ने का आत्मविश्वास जोड़ते रहते हैं । इसके साथ हिमाचल का अनुपम सौन्दर्य जो जितना आकर्षक और मोहक है, भीतर से उतना ही कँटीला भी । कुल मिलाकर कह सकता हूँ कि मेरे लेखन में मेरे अपने परिवेश और अपने जिए - भोगे अनुभव की ही सदा प्रेरणा रही है ।

प्रश्न : *हरनोट जी, विचार और विचारधारा कलम के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं ।*

उत्तर : शायद कोई भी रचना बिना विचार के नहीं रची जा सकती । यह हम पर निर्भर है कि वे विचार साहित्य की शर्तों को कितना पूरा करते हैं और पाठकों को कितना प्रभावित कर पाते हैं । आज हमारे समाज में अनेक विचारधाराएँ मौजूद हैं और यह लिखने वाले पर निर्भर है कि वह किसे अपनाता है । परन्तु साहित्य को किसी एक विचारधारा के दायरे में समेटना और उसी में बांधे रखना उसी तरह है जैसे हम पशुओं को एक खूंटे में बाँधे रखते हैं । वहाँ रचना की स्वतंत्रता मेरे विचार से नहीं रह पाती । एक रचनाकार के आगे पूरा समाज होता है उसमें रह रहे हर विचारधारा के लोग रहते हैं इसलिए आपका लिखना तभी सार्थक है जब उसमें आमजन की बात होगी, जिसे हर विचारधारा से जुड़ा पाठक पसंद करेगा ।

प्रश्न : *आपकी अन्य कहानियों के साथ दो कहानियाँ 'माँ पढ़ती हैं' और 'बिल्लियाँ बतियाती हैं' पाठकों के साथ -साथ मेरी भी प्रिय कहानियाँ हैं । आप की कहानियों का मूल लोक पहाड़ी ग्रामीण है। शायद इसलिए आपकी भाषा ग्रामीण परिवेश और वहाँ की सोच की तरह स्पष्ट और बेधड़क होने के बावजूद मन को भावुक कर जाती है .....ऐसा क्या है जो आपको इस जीवन के प्रति इतना रोमांचित करता है।*

उत्तर : हर व्यक्ति के भीतर उसका परिवेश बसा रहता है। मेरे भीतर भी वही घर-गाँव, पहाड़, उनमें बसते लोग और हिमालय की तरह उनके अनेक संघर्ष बसे हैं। उनका जीवट विस्मित करता है । विविध परम्पराओं, संस्कृति और रीति- रिवाज़ों के साथ उनकी सहजता और अपनापन हमेशा प्रभावित करता रहा है । वर्तमान समय के अनेक आघातों से लड़ते हुए उनका जीवन यापन.....। यही सब कुछ भरा पड़ा है मेरे भीतर भी और इसका प्रभाव रचनाओं पर भी स्वभाविक है और रहेगा भी। यही सब कुछ रोमांचित भी करता रहता है।

प्रश्न : *हरनोट जी आपकी रचना प्रक्रिया क्या है ? कथ्य और शिल्प में आप तालमेल कैसे करते हैं ? क्या कभी ऐसा हुआ है कि एक का पक्ष लिया गया हो ।*

उत्तर : सुधा जी, सच कहूँ तो जिस तरह की व्यस्तताएँ और नौकरी, घर-परिवार के दवाब के बीच मैं जीता रहा हूँ, मुझे स्वयं नहीं मालूम कि मेरी लिखने की कोई 'रचना प्रक्रिया' भी है। सच यह है कि मेरा लिखना- पढ़ना कभी भी न तो नियमित रहा और न इसके लिए समय ही जुट पाया । अपने घर में कभी भी इतनी भर जगह नहीं जुटी जहाँ एकाग्र होकर लिखूँ । पहले मेरे पास

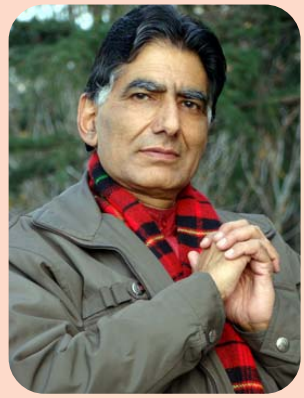

एस.आर. हरनोट

जन्म -हिमाचल प्रदेश के जिला शिमला की पिछड़ी पंचायत व गाँव चनावग में 22 जनवरी, 1955 को ।

शिक्षा -बी.ए (आनर्ज़), एम. ए (हिन्दी), पत्रकारिता, लोक सम्पर्क एवं प्रचार -प्रसार में उपाधि पत्र ।

सम्प्रति -हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम, शिमला में सहायक महा प्रबंधक (सूचना एवं प्रसार) के पद पर कार्यरत ।

प्रकाशित कृतियाँ - सात कहानी संग्रह -- पंजा, आकाशबेल, पीठ पर पहाड़, जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, मिट्टी के लोग, दरोश तथा अन्य कहानियाँ, माफिया ।

उपन्यास -हिडिम्ब

इतिहास और संस्कृति पर तीन पुस्तकें प्रकाशित -हिमाचल के मंदिर और उनसे जुड़ी लोक कथाएँ, यात्रा, हिमाचल की कहानी, हिमाचल एट ए ग्लांस (संयुक्त कार्य)।

कई कहानियों का अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद ।

सम्मान - अन्तरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान एवं हिमाचल अकादमी सम्मान सहित 10 अन्य सम्मान ।

फ़िल्म -कहानी 'दरोश' पर दिल्ली दूरदर्शन द्वारा 'इंडियन क्लासिक्स सीरीज़ के तहत' फ़िल्म का निर्माण ।

ओम भवन, मोरले बैंक इस्टेट, निगम विहार, शिमला-2 हि0प्र0। फोन-0177-2625092

Email:
s_r_harnot@rediffmail.com

एक छोटा सा हिन्दी का टाइपराइटर था, जिसे उठाकर कहीं भी लिखने बैठ जाता और जबसे कम्प्यूटर सीखा, अब उसी पर लिखना होता है । अभी तक हाल यह है कि उस कम्प्यूटर के लिए कोई स्थायी जगह है ही नहीं । कभी इधर तो कभी उधर । उसकी घर के कोने में यात्राएँ होती रहती हैं । मन में बहुत सी चीज़ें रहती हैं । इसी बीच दूसरे सारे काम भी करने होते हैं। सुबह से शाम तक का समय दफ्तर ले लेता है। अवकाश के दिनों में गाँव जाना होता है। कई थीम मस्तिष्क में घूमते रहते हैं । जब कोई थीम परिपक्व होता है तो मन में ही उसकी रचना होती जाती है। उस पर भीतर ही भीतर काम चलता जाता है। कभी अपरिपक्वता की स्थिति में कुछ चीज़ें उस संदर्भ में या तो कम्प्यूटर पर या किसी काग़ज़ पर लिख लेता हूँ । बहुत बार ऐसा होता है कि भीतर से वह चीज़ बाहर आना चाहती है पर समय नहीं होता । पर फिर भी कुछ ऐसा हो जाता है कि समय निकाल लेता हूँ, किसी छुटटी के दिन या शाम को । कम्प्यूटर पर पहला ड्राफ्ट बनता है तो उसे कई दिनों तक या तो प्रिंट लेकर साथ रखता हूँ या फिर शाम को या अवकाश के दिन उसी में लगा रहता हूँ । कई - कई बार पढ़ने और संशोधन के बाद यदि कुछ बन जाता है तो संतोष सा हो जाता है पर उसके बाद उससे बेहतर लिखने की एक अधूरी सी प्रक्रिया भीतर चलने लगती है।

जहाँ तक कथ्य और शिल्प की बात है, तो लिखते हुए, ये दोनों बातें स्वभाविक तौर से रचना के साथ चलती जाती है। मैं कथ्य पर इसलिए विशेष ध्यान देता हूँ कि वह कुछ अलग हटकर और नया हो जिसे पाठक पसन्द करें।

प्रश्न : *हरनोट जी क्या विषय ऐसा मिल गया और आप ने उपन्यास लिख डाला या लगा कि अब आपको उपन्यास लिखना चाहिए ।*

उत्तर : नहीं सुधा जी, ऐसा नहीं है कि विषय ऐसा मिल गया था । आप ने दारोश संग्रह की कहानियाँ पढ़ीं हैं तो महसूस हुआ होगा कि हर कहानी का इतना व्यापक फलक है कि वह एक पूरे उपन्यास का विषय बन सकता है। कई बार मन करता है कि दारोश की एक- एक कहानी को उपन्यास में बदल दूं। माँ पर मेरी जो दो कहानियां हैं उनसे अभी मन नहीं भरा है और उपन्यास मेरा 'माँ' पर ही आना है। कहने का तात्पर्य यह है कि विषय की मेरे पास कभी कमी नहीं रही लेकिन समय का हमेशा अभाव रहा है। हिडिम्ब लिखने के लिए एक महीने का अवकाश मुश्किल से लिया था, लेकिन उसे भी बीच में ही दफ़्तर से कैंसिल कर दिया गया और लगता है कि वह अवकाश कैंसल न हुआ होता तो यह उपन्यास और ज़्यादा अच्छा हो सकता था। उसके बाद कभी इतना लम्बा अवकाश नहीं मिल पाया। एक साथ अभी भी तीन नए विषय दिमाग में घूमते रहते हैं लेकिन दफ़्तर की व्यस्तता और दूसरी परेशानियाँ उन्हें उपन्यास का रूप नहीं लेने देती । देखिए एक साल बाद सेवानिवृत्ति है, कुछ समय मिला तो इन्हें पूरा करूँगा ही, इसके साथ और भी कई विषय मन के भीतर तहों में बंद है।

प्रश्न : *हमारी शुभकामनाएँ आप के साथ हैं । शीघ्र ही आप उन्हें पूरा करें । हरनोट जी, आज की हिंदी कहानी और उसकी स्थिति के बारे में आप क्या सोचते हैं ।*

उत्तर : आज की कहानी बहुरंग लिये हुए है । उसमें नया भी है तो पुराना भी । अच्छा भी और बुरा भी है। पठनीय भी और अपठनीय भी है। चर्चित भी और बहुत कुछ अचर्चित भी है । लोक भी उनमें मौजूद हैं तो परम्पराओं की छौंक के साथ आधुनिक और अति आधुनिक भी । यानि एक साथ हर पीढ़ी आज कहानी लेखन में सक्रिय है । इसके बावजूद बहुत कुछ छूटता सा भी जा रहा है, जो महसूस तो किया जा सकता है, पर दिख नहीं रहा है । फिर भी कुल मिलाकर स्थिति सुखद है । जो लोग जिस भी पीढ़ी में ईमानदारी और निष्ठा से लिख रहे हैं, उनको सलाम करना चाहता हूँ ।

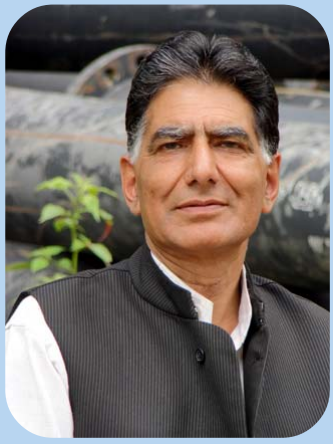

हम अगर इतिहास देखें तो हमारे पास बचा वही है जो समाज या पाठकों की कसौटी पर खरा उतरा है। बेहिसाब प्रायोजित चर्चाएँ, उछाल, प्रचार-प्रसार और पुरस्कार कभी भी किसी को बड़ा या महान नहीं बनाते, अच्छी रचना ही आपको बड़ा बनाती है ।

प्रश्न : *आज की कहानियों में कथात्मकता समाप्त होती जा रही है .....*

उत्तर : समय के साथ-साथ सब कुछ बदलते रहना स्वाभाविक है। हम आज भी जब कहीं पुराने गानों को सुनते हैं तो मन करता है कि एक घड़ी रुक कर उस मिठास को अपने भीतर भर लें। रचना की बात भी वही है। आप जब कथा कथा की तरह, नाटक को नाटक की तरह, कविता को कविता की तरह और निबंध को निबंध की तरह नहीं रचेंगे तो उसका मूलाधार क्या बचेगा....? और आज हमारे लिए यह ज़रूरी है कि इस 'मूल' को बचाए रखें। कई बार हम जब प्रयोगों पर अधिक ध्यान देने लगते हैं तो रचना के मूल को ही समाप्त कर बैठते हैं।

प्रश्न : *युवा सृजनकारों के गुट बन गए हैं । एक गुट साहित्य के बाज़ारवाद से प्रभावित है और दूसरा मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थावान है । संवेदना कसौटी में बहुत आगे पर बाज़ार तंत्र में कोई नाम लेवा नहीं । इस विषय पर आप क्या सोचते हैं ?*

उत्तर : सृजन के लिए मंच या गुट बनना कोई बुरी बात नहीं है। मेरे विचार से यह हर समय में होता रहा है। लेकिन जब आप सकारात्मक सोच के बजाए नकारात्मक दृष्टि से साहित्य सृजन को प्रायोजित करने में लग जाएँगे तो उस सृजन के वह मायने नहीं रहेंगे जिसके लिए साहित्य है। हम अगर इतिहास देखें तो हमारे पास बचा वही है जो समाज या पाठकों की कसौटी पर खरा उतरा है। बेहिसाब प्रायोजित चर्चाएँ, उछाल, प्रचार-प्रसार और पुरस्कार कभी भी किसी को बड़ा या महान नहीं बनाते, अच्छी रचना ही आपको बड़ा बनाती है । साहित्य सृजन की हमारे पास आज बहुत लम्बी और उन्नत

परम्परा है और हम युवा होते हुए इसी परम्परा से सीख लेते भी हैं। यह आप पर निर्भर है कि आप उस परम्परा से कितना सीख पाते हैं और समय के साथ-साथ उसमें नया क्या जोड़ते चले जा रहे हैं। साहित्य इसलिए ही है कि आप उसे बचाएँ जो नष्ट हो रहा है और उसे साधे रखें जो आपसे छीना जा रहा है । आज युवा सृजनकारों के लिए जितनी संभावनाएँ और मंच उपलब्ध हैं उतने पहले कहाँ थे, इसलिए उनकी यह ज़िम्मेदारी बन जाती है कि इनका सम्मान करते हुए वे मानवीय मूल्यों और अपनी परम्पराओं के प्रति हमेशा सजग रहें । हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि हम अपनी ज़मीन से कट कर कहीं नहीं पहुँच पाते। जब हम अपनी ज़मीन से जुड़ कर काम करेंगे तो उस मिटटी की खुशबू दूर-दूर तक पहुँचेगी ।

प्रश्न : *आज युवा वर्ग साहित्य से दूर होता जा रहा है, इसके लिए आप किसे दोषी मानते हैं।*

उत्तर : सुधा जी, मेरे विचार से इसके लिए हम सामूहिक रूप से दोषी हैं । सबसे पहले एक लेखक होने के नाते मैं यह सोचता हूं कि हम हर तरह से युवाओं सहित पाठकों को हिन्दी और हिन्दी साहित्य की ओर आकर्षित करने में कहीं न कहीं असफल हुए हैं। उसका कारण हमारी रचनाएँ भी हो सकती है और दूसरा कारण उनका व्यापक प्रचार-प्रसार का न होना भी है। आज हिन्दी के जितने समाचार पत्र हैं उनमें साहित्य के लिए कोई जगह नहीं रह गई है। जो है भी वह नाममात्र की है । कभी अमर उजाला साहित्यिक वार्षिकी निकाला करता था, तो पाठक उसका वर्ष भर इंतजार किया करते थे। मेरे पास आज भी उन संस्करणों की फाइलें मौजूद हैं। यही हाल हमारे चैनलों का है । वहाँ जो जगह 'लगातार सौ या दौ सौ खबरों' के बाद बचती है, उन पर ज्योतिषियों और बाबाओं का कब्जा है। आज तक न तो किसी हिन्दी किताब के छपने की ब्रेकिंग न्यूज बनी और न ही किसी साहित्यकार के दिवंगत होने की। किसी लेखक या पुस्तक पर चर्चा होना तो दूर की बात है। इसके अतिरिक्त साहित्य की जो लघु पत्रिकाएँ हैं वे भी पाठकों में वह स्थान आज नहीं बना सकी है जो कभी सारिका ने बनाया था। सुखद लग सकता है कि हर साल दो-तीन नई पत्रिकाएँ आ जाती हैं पर दुखद यह है कि उसके लेखक और पाठक भी

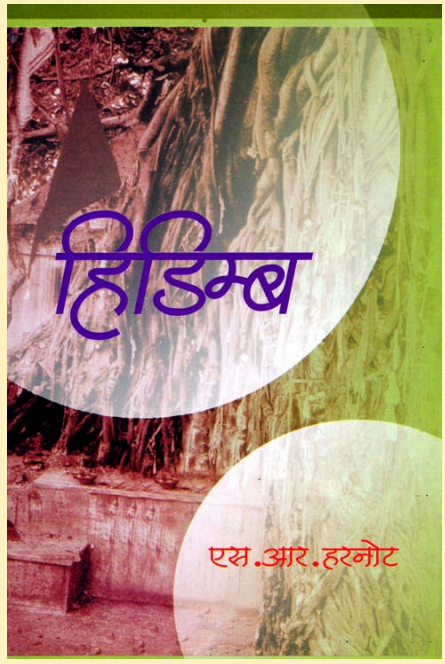

कमोवेश वही है जो दूसरी पत्रिकाओं के हैं । इसलिए हम आज साहित्यिक पत्रिकाओं को भी आमजन तक पहुँचने में नाकाम हुए हैं । कुछ पत्रिकाएँ हैं जो ज़रूर संख्या में अधिक हैं, परन्तु उसके बावजूद भी डेढ़ अरब वाले इस देश में उनकी मौजूदगी भी नाममात्र ही हैं । जो पत्रिकाएँ निजी संस्थानों या प्रयासों से निकल रही हैं, उनकी सबसे बड़ी समस्या आर्थिक है । वे मुश्किल से उनका प्रकाशन नियमित रख पा रही है । दूसरी तरफ जो पत्रिकाएँ सरकारी संस्थानों से प्रकाशित होती हैं उनके पास धन की कोई कमी नज़र नहीं आती, वहाँ मेहनत, निष्ठा और प्रतिबद्धता की कमी आड़े आती है। विचारणीय प्रश्न यह है कि आज तक मिलकर हम ऐसा प्रयास क्यों नहीं कर पाए कि कोई एक दो साहित्यिक पत्रिकाओं की इतनी प्रसार संख्या हो जाए कि वह दूसरी 'रंगीन मिजाज' की पत्रिकाओं की तरह लाखों में हों....? जब हमारा मकसद एक है तो प्रयास भी सामुहिक होने ज़रूरी है।

हरनोट जी मैं आप से सहमत हूँ...

दूसरी बात यह है कि आज हम अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा के लालच में 'अंग्रेजी स्कूलों' में पढ़ा रहे हैं जहाँ वे उठना, बैठना, खाना-पीना, बोलना सभी 'अंग्रेज़ी' में सीखते हैं । उन्हें 'बी' से 'बफ़ैलो' तो पता है पर सही मायनों में 'भैंस' उन्होंने देखी ही नहीं होती है। कभी जब माँ-बाप अर्थात उनके 'मॉम-डैड' किसी किताब की दुकान में जाए और वहाँ गलती से बच्चा कोई किताब पसंद कर ले तो उसे उसके बदले कोई 'वीडियो गैम' को ज़्यादा प्राथमिकता दी जाती है। यह संस्कार भी जहाँ युवा पीढ़ी को हिन्दी और हिन्दी साहित्य से दूर करते हैं वहाँ अपनी भाषा के प्रति भी विमुख कर रहे हैं । अब तो जिस तरह से आज हमारी युवा पीढ़ी हिन्दी लिख रही है वह आश्चर्य में डालती है कि अंग्रेज़ी के शब्दों को पीट-पीट कर जो 'हिन्दी' निकलेगी वह अपनी ही 'भाषा' के मर्म को महसूस करने में असफल होगी। इन्टरनेट की जो दुनिया हमारे सामने हैं एक कारण वह भी 'दूरी' का है। विदेशों में मुझे लगता है कि आज भी पढ़ने की संस्कृति जिंदा है। मैं जब 2003 में लंदन गया था तो यह सुखद आश्चर्य लगा कि बसों में, ट्रेनों में, मालों पर, खाते -पीते, चलते, आराम करते लोग जिनमें युवा अधिक थे, अपने हाथ में कोई न कोई पुस्तक उठाए रखते हैं और जब भी फुर्सत मिले वे उसे पढ़ने लग जाते हैं और हमारे देश में इसके विपरीत हमारी युवा पीढ़ी मोबाइल की तारें अपने कानों में ठूँसे चौबीसों घण्टे किसी और ही दुनिया में व्यस्त हैं। हमारे विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागों की तरफ आस होती है तो वहाँ भी हाल वही है । वहाँ रटे-रटाए या पिटे-पिटाए पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कुछ हासिल नहीं हो पाता । यहाँ तक कि वर्तमान साहित्य में हो क्या रहा है, कौन- कौन सी पत्रिकाएँ जिंदा है या मर रही है उन्हें कुछ पता नहीं होता । विद्यार्थियों से जो शोध करवाए जाते हैं, उन्हें पढ़ कर सिर पीटने को मन होता है । वहाँ भी हिन्दी और हिन्दी साहित्य के प्रति वही उदासी दिखाई पड़ती है। इस तरह युवा ही नहीं हमारा पूरा समाज ही साहित्य से कटता नज़र आता है । इसके बावजूद भी जगह-जगह जो प्रयास हो रहे हैं, वे आश्वस्त करते हैं कि कभी न कभी तो सवेरा आएगा ही।

प्रश्न : *हरनोट जी, एक प्रश्न कुलबुला रहा है कि आप क्यों लिखते हैं ..?*

उत्तर : सुधा जी, इस प्रश्न का सही उत्तर देना कठिन है । लेखक बनना या होना तो आपके अपने पर निर्भर है और न ही किसी स्कूल - कालेज या विश्वविद्यालय की पढ़ाई से आप लेखक बन सकते हैं । यह किसी विशेष प्रशिक्षण से भी सम्भव नहीं

है । यह भी ज़रूरी नहीं है कि यदि हमारे दादा या पिता लेखक थे या हैं तो उनकी औलाद भी इसी विधा को अपनाएगी । आपके साथ बराबर शोषण या अन्याय होता रहा हो और कोई कहे कि उस स्थिति में भी आप लेखन में आते हैं तो यह बात भी नहीं है । मेरे विचार से लेखक बनना एक 'गॉड गिफ्ट' है, जो स्वाभाविक तौर से आपका रुझान इस ओर ले जाता है । मैंने आपके पहले प्रश्नों में अपने लिखने की जो कहानी आपको बताई, वह यहाँ तक मेरे लिखने तक की प्रक्रिया थी । मैं यह भी मानता हूँ कि जब हम लिखना शुरू करते हैं, तो बहुत सी चीज़ें हमारे साथ चलती जाती हैं । आपको जब भी कोई घटना या चीज़ हांट करने लगती है, तो भीतर ही भीतर किसी न किसी रूप में बाहर आने को छटपटाती रहती है । इस छटपटाहट को जहाँ हर व्यक्ति अपने-अपने तरीके से व्यक्त करता है, वहाँ लेखक इसे अपनी रचना बना लेता है । वह किसी भी विधा में हो सकती है । आज लिखना और पढ़ना मेरे जीवन का एक अंग बन गया है । मैं इसे भी एक ज़रूरी उत्तरदायित्व समझकर निभा रहा हूँ ।

प्रश्न : *कुछ ऐसा जो कि आज तक कहा नहीं गया और आप महसूस करते हैं कि कहा जाना चाहिए ।*

उत्तर : ऐसा तो सुधा जी कुछ नहीं होगा जो किसी न किसी रूप में कहा नहीं गया होगा । हम सभी उसी की पुनरावृत्ति तो कर रहे हैं अपने-अपने तरीके और अंदाज से । इसके बावजूद एक बात ज़रूर सोचता रहता हूँ कि काश! भारतवर्ष के हज़ारों मंदिरों के बीच एक साहित्य का विशाल मंदिर भी होता जिसके मध्य हम प्रेमचंद और दूसरे हिंदी के महान लेखकों की मूर्तियाँ स्थापित करते और उनकी पुस्तकें उनके 'गणों' की तरह वहाँ सजी रहतीं । प्रसाद में पुस्तकें मिला करतीं । पाठक भक्त वहाँ आकर खूब भेंट चढ़ाते, जिससे साहित्य फलता-फूलता जाता । काश! कि हमारे पास हिंदी साहित्य का एक विशाल मंच होता, मिल कर सभी एक ऐसी पत्रिका निकालते जो घर-घर पहुँचती, साहित्य की अपनी एक संसद होती, उसका अपना एक चैनल होता, जहाँ 24 घंटे 24 रिपोर्टर सिर्फ साहित्य की बात करते, बहसें लाइव दिखाई जातीं । प्रगतिवाद, जनवाद, क्षेत्रवाद, दलित और सवर्णवाद सहित प्रवासी साहित्य के बजाए सिर्फ हिंदी और हिंदी के साहित्य और लेखकों की बात होती ?

प्रश्न : *हरनोट जी, काश ! ऐसा हो पाता...अच्छा यह बताएँ कि साहित्य के एक मुकाम पर पहुँच कर आप स्वयं को कहाँ पाते हैं ।*

उत्तर : सुधा जी ! सच कहूँ तो मैं आज भी अपने आप को वहीं खड़ा पाता हूँ जहाँ पहले था, यूँ कहूँ कि साहित्य का एक विद्यार्थी जिसे अभी बहुत कुछ सीखना है और पढ़ना है।

प्रश्न : *विदेशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य पर मैं आपके विचार जानना चाहती हूँ । आपने किस-किस लेखक व कवि को पढ़ा है । और आप उनके बारे में क्या सोचते हैं?*

उत्तर : सुधा जी, मुझे विदेशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य के लेखकों से पहली बार वर्ष 2003 में कथा यू० के०/ श्री तेजेन्द्र शर्मा के माध्यम से परिचित होने का अवसर मिला, जब मैं लंदन अन्तरराष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान लेने गया था । वहाँ के तकरीबन सभी लेखकों से उस समय परिचय हुआ और उनके काम को देखने-समझने का भी अवसर मिला। मुझे यह देख कर सुखद आश्चर्य हुआ कि तेजेन्द्र शर्मा जहाँ ब्रिटेन में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए तन, मन और धन से काम कर रहे हैं वहाँ विदेश में रह रहे हिंदी लेखकों को भारतीय लेखकों सहित हर वर्ष सम्मानित भी किया जा रहा है। इसी दौरान वहाँ मेरा परिचय पदमेश गुप्त, सत्येन्द्र श्रीवास्तव, मोहन राणा, अचला शर्मा, उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, प्राण शर्मा, शैल अग्रवाल, सोहन राही से हुआ(कई नाम छूट भी सकते हैं)। तेजेन्द्र शर्मा से ही मैंने अन्य देशों में हिंदी के लेखकों के कुछ परिचय भी लिए। उन दिनों इन्टरनेट की तीन ई-पत्रिकाओं हिंदी नेस्ट, साहित्य कुंज, अभिव्यक्ति से भी परिचय हुआ। वास्तव में इन्टरनेट का इस्तेमाल भी इसी दौरान सीखना शुरू किया था। इन पत्रिकाओं में निरन्तर विदेशों में रह रहे हिंदी के लेखकों की रचनाएँ देखने -पढ़ने को मिलती रही। उसके बाद कृष्ण कुमार द्वारा निकाली जा रही पत्रिका 'अन्यथा' भी पढ़ने को मिलती रही और बहुत अच्छा लगा कि विदेशों में हिंदी के लिए इतना काम हो रहा है। उसके बाद भारत से निकलने वाली पत्रिकाओं में भी विदेशों में लिख रहे लेखकों की तलाश रहती। इसी तरह तकरीबन सभी से परिचय हुआ। उसके बाद वर्तमान साहित्य, ज्ञानोदय के साथ कई अन्य पत्रिकाओं ने प्रवासी साहित्य पर विशेषांक निकाले, जो महत्वपूर्ण थे । अब तो कई और ई -पत्रिकाएँ भी वहाँ के लेखक निकाल रहे हैं । शैल अग्रवाल 'लेखनी नेट' निकाल रही है। सुधा जी आप की पत्रिका ऑनलाइन और मुद्रित दोनों तरह से है । 'गर्भनाल' प्रवासी भारतीयों की पत्रिका बहुत मेहनत से निरंतर निकल रही है। जिन लेखकों की रचनाएँ मैंने पढ़ी हैं उनमें आप के साथ सुषम बेदी, उमेश अग्निहोत्री, अनिल प्रभा कुमार, धनंजय कुमार , गुलशन मधुर, कृष्ण बिहारी, इला प्रसाद, अभिमन्यु अनंत, अनिल जनविजय, आशा मोर, भावना सक्सेना, पूर्णिमा वर्मन, शालीग्राम शुक्ल, रेणु राजवंशी गुप्ता, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, विशाखा ठाकर, लक्ष्मीकांत मालवीय और अर्चना पैन्यूली शामिल हैं। बहुत से नाम रह गए हैं उसके लिए क्षमा चाहता हूँ । आप सभी की रचनाओं में विदेशों में रहते हुए भी अपनी मिट्टी के लिए अपार स्नेह और आदर मौजूद है । यहाँ घट रहे अच्छे-बुरे का सुख और वेदना उनमें भरी पड़ी है और इसके साथ हिंदी और हिंदी साहित्य के लिए लगातार काम करने का जुनून आप सभी में मौजूद है, जिसके लिए आप सभी को साधूवाद देना चाहता हूँ । इसके बावजूद जो यह 'प्रवासी' शब्द आया है कि प्रवासी लेखक, प्रवासी साहित्य इससे बहुत दर्द सा दिल में उठता है कि एक भाषा और उसे रचने वाले लेखकों के लिए आज इतने 'कोने' कैसे ईज़ाद हो गये हैं ? शायद हमने अंग्रेज़ी के लेखकों को इस तरह के 'ताज' से कभी नहीं नवाज़ा तो फिर हिंदी भाषा के लेखकों के साथ ही ऐसा क्यों ?

हरनोट जी, यह प्रश्न तक़रीबन बहुत से लेखकों के मन में उठता है । हिन्दी साहित्य में कभी छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तो कभी स्त्री विमर्श, दलित विमर्श अमाँ विमर्श और फलाँ विमर्श और अब प्रवासी साहित्य । प्रवासी साहित्य पर तो काफ़ी चर्चा चल रही है शायद कोई दिशा मिल जाए ।

आप ने हिन्दी चेतना को अपना अमूल्य समय दिया, हम आप के बहुत आभारी हैं ।

●

कहानी

मरीचिका

सुदर्शन प्रियदर्शिनी
(अमेरिका)

किन्तु लगता था कि माँ की सारी हैकड़ी धरी की धरी रह गई थी । वह साबित नहीं कर सकी थी वे विवाहित है । माँ के पास न पैसा था न परिवार की पीठ -जिस पर बैठकर वह अपना परचम लहरा सकती । इसी तरह माँ पर पिता के शिकंजे कसते गए । वह आए दिन किसी-न-किसी बात पर झगड़ते-लड़ते कई बार घूंसे-लात भी मारते । नौकरी तो पहले ही छुड़वा दी थी । उन्हें एक तरह का नज़रबंद करके रख दिया था ताकि बात बाहर न निकले । उनकी फैक्टरी में वह जहाँ काम करती थी, उनकी नई शादी के बारे में कोई नहीं जानता था । माँ को बाहर निकलने नहीं दिया जाता था और खबरदारी थी कि बहन को कोई बात पता नहीं चलनी चाहिए ।

इतिहास के किसी पुराने खंडहर की तरह वह शब्दों का टुकड़ा उसके सामने अचानक खुलकर आया था । उसी तरह जैसे किसी पुरातत्त्वान्वेशी को अचानक खोजते -खोजते कोई ताबूत मिल जाये जिसकी वर्षों से उसे तलाश हो । आज वर्षों से सालता कोई एक प्रश्न स्वयं उत्तर बनकर सामने आ खड़ा हो गया था और कह रहा था: यह हूँ मैं तुम्हारे सवालों का जवाब । वह भौंचक्क सी उन पंक्तियों को पढ़ती रही थी, जो उन खंडहरों में से रेंगती हुई इन्टरनेट के रास्ते इस समय उस तक पहुँच रही थीं ।

वह ठिठक गई थी । चुपचाप ! इन्टरनेट के सामने जैसे उसकी बोलती बन्द हो गई थी । जो खंडहर आज तक माँ की दलीलों की कथित प्रताड़नाओं के नीचे दबा पड़ा था, आज अपने पूरे वजूद के साथ सामने था और अपने पूरे अस्तित्व का उद्घोष कर रहा था ।

उसकी उम्र बीस बरस की होने को आई । कई बार उसने माँ से पूछना चाहा-अपने आप से पूछना चाहा कि क्या कोई पिता अपनी संतान से इस तरह विमुख रह सकता है? अपनी सहेलियों के पिताओं का अपने बच्चों के प्रति लगाव,चिन्ता, लाड़-प्यार, लड़-झगड़, ज़िद कहीं उसे रोज़ उद्वेलित करती रही है । कहीं ऐसा तो नहीं कि माँ की अपनी अहम्यताओं के तहत- उसका भविष्य और पिता का सम्बन्ध दब गया हो । यह भी तो सकता है कि माँ अपनी ही परिस्थितिओं के कारण इतनी बाग़ी हो गई हो कि न चाहती हो मैं उनसे मिलूँ ।

आज माँ के भय को वह समझ रही है । माँ कहती है कि वह मात्र डेढ़ साल की थी, जब वह उसे लेकर भागी थी । किसी की सहायता से ही माँ ने टिकट का बंदोबस्त किया था और जैसे-तैसे न्यूयार्क पहुँच गई थी ।

माँ के पास विज़िटिंग वीज़ा था और मौसी न्यूयार्क में रहती थी । उस समय उनके पास कुछ नहीं था, सिवाय हाई स्कूल की डिग्री और एक दफ्तर से स्टेनो की हैसियत से काम करने का थोड़ा सा अनुभव -वह भी शादी से पहले का ।

पिता ने यूँ माँ से शादी अपनी पसंद से की थी । माँ पिता के ही दफ्तर में काम करती थी । पिता उनके बॉस थे । माँ तेज-तर्रार थी, दबंग थी । जिस तरह वह अपना हक़ छीनकर लेती थी, कहीं उसी तकरार में-पिता को माँ पंसद आ गई थी । वह कॉफी के बहाने माँ को केन्टीन में बुलाते और तरह-तरह की बातें करके फुसलाते ।

तुम कभी किसी से हार नहीं मान सकतीं ।

हूँ....

यह बात मुझे बहुत पसंद है ।

हूँ.. माँ कुछ बोल नहीं पाती थी,उनके सामने ।

तुम्हें लगता है कि धौंस से सब कुछ हासिल किया जा सकता है...

माँ निरुत्तर हो जाती ....

इसी निरुत्तरता और मायावी आकर्षण ने उन्हें एक दिन शादी के बंधन में बाँध दिया ।

पिता की माँग थी कि शादी बिना किसी शोर-शराबे और लेन-देन के होगी । बिलकुल एकांत मंदिर में । नाना-नानी जीवित नहीं थे अन्यथा पिता की पड़ताल करते । उनका आगा-पीछा खगालते । बड़ी बहिन थी-जो स्वयं चाहती थी कि किसी तरह उनके सिर का बोझ हल्का हो । अभी दो बहनें और भी थीं । भाई कोई था नहीं । वह मेरे पिता की इस दयानतदारी पर वारी न्यारी थी ।

कुछ दिन बहुत अच्छे से बीते थे । लेकिन धीरे-धीरे माँ को पिता की असली गुत्थी समझ में आ गई थी । वे पहले से शादीशुदा थे । माँ को बड़ा धक्का लगा । उन्होंने बहुत बवाल भी खड़ा किया । किन्तु लगता था कि माँ की सारी हैकड़ी धरी की धरी रह गई थी । वह साबित नहीं कर सकी थी वे विवाहित है । माँ के पास न पैसा था न परिवार की पीठ -जिस पर बैठकर वह अपना परचम लहरा सकती । इसी तरह माँ पर पिता के शिकंजे कसते गए । वह आए दिन किसी-न-किसी बात पर झगड़ते-लड़ते कई बार घूँसे-लात भी मारते । नौकरी तो पहले ही छुड़वा दी थी । उन्हें एक तरह का नज़रबंद करके रख दिया था ताकि बात बाहर न निकले । उनकी फैक्टरी में वह जहाँ काम करती थी, उनकी नई शादी के बारे में कोई नहीं जानता था । माँ को बाहर निकलने नहीं दिया जाता था और खबरदारी थी कि बहन को कोई बात पता नहीं चलनी चाहिए ।

माँ ने यहाँ तक समझौता करने की बात कही कि वह उनकी पहली पत्नी से मिलना चाहती है और एक तरह का समझौता करना चाहती है, पर पिता ने कभी ऐसा नहीं होने दिया । बहुत बाद में धीरे-धीरे परत दर परत बातें खुलती गई कि उनके बच्चे भी हैं-शायद दो लड़के -जो उस समय सात से दस बरस के थे । पिता अक्सर यह कहकर टूर पर रहते कि माल लेने जा रहें हैं । जाकर दूसरी के पास रहते थे, दूसरे शब्दों में कई-कई दिन इसी तरह वे बाहर रहते लेकिन यहाँ माँ पर पूरी पहरेदारी रखते थे । उनके चौकस चौकीदार तैनात रहते थे । पैसे की उन्हें कमी थी नहीं । पिता कभी दिन को आते और कभी रात को आ जाते । कभी रात को जाते और अगली सुबह दरवाज़ा खटखटा कर आ जाते और पूरी धौंस के साथ माँ के साथ अपना पतित्व निभाते ।

कुछ सालों तक सिलसिला चला और फिर एक दिन मैं माँ के पेट में आ गई । एक अनचाही ख्वाहिश की तरह । माँ ठंडी हो गई थी । पिता ने भी मारना छोड़ दिया था पर दोनों में कहीं भी कोई सामंजस्य नहीं हो पाया था । दोनों जैसे एक कमरे की उत्तर-दक्षिण दीवारों की तरह अपनी- अपनी जगह अटल खड़े रहते थे ।

एक दिन माँ ने गुस्से में पूछा -मुझसे शादी ही क्यों की आपने, आपके पास सब कुछ तो था पहले से ।

तुम्हारी हेकड़ी तोड़ने के लिए ।

क्यों! आप तो कहते थे कि आपको मेरा यही अंदाज पसंद है ।

इसलिए ....कि हेकड़ी जितनी बुलंद होती है उतना ही उसे तोड़ने में आनंद मिलता है । तुम्हारी बुलंद हेकड़ी को ही मैं मसलना चाहता था, वही मैंने किया ।

माँ हमेशा के लिए निरुतर हो गई । अब किनारों का कोई मतलब नहीं था । धीरे-धीरे माँ की ओर पिता का बर्ताव और भी कठोर और रुखा होता गया । अब यह स्पष्ट हो गया था कि पिता के लिए यह शादी एकमात्र ज़िद थी और माँ के लिए बहन के शिकंजे से छूटने का रास्ता ।

ऐसे ही समय कहीं एक राहू ग्रह की तरह मैं पैदा हुई । माँ पर जहाँ एक ओर ममता हावी होती थी, दूसरी ओर मैं उनके पाँवों की बेड़ी बन गई थी । मेरे पैदा होने पर भी पिता ने कभी मेरी तरफ या माँ की तरफ अपना रवैया नहीं बदला । इतना पैसा होने के बावजूद मुझे मेरे बचपन के लाड़-प्यार वाले सुखों से वंचित ही रखा । माँ बड़ी मुश्किल से घर के खर्चों में कतर ब्यौंत कर मेरे लिए चीज़ें जुटाती । कभी मौसी देती, वह मदद के कारण से नहीं देती थी- मौसी के लाघव से देती क्योंकि मौसी कुछ नहीं जानती थी ।

फ़ैक्ट्री में एक लड़का काम करता था मेरी माँ के साथ । शुरू से ही माँ के साथ उसकी पटती थी

सुदर्शन 'प्रियदर्शिनी'

जन्म : लाहौर अविभाजित भारत । शिक्षा पीएचडी हिन्दी । अनेक वर्षों तक भारत में शिक्षण कार्य किया ।

अमरीका में 1982 से ।

अमरीका में रह कर भारतीय संस्कृति पर आधारित लगभग दस साल तक पत्रिका निकाली । टी वी प्रोग्राम एवं रेडियो प्रसारण भी किया । अब केवल स्वतंत्र लेखन ।

पुरस्कार

महादेवी पुरस्कार हिन्दी परिषद टोरंटो कनाडा महानता पुरस्कार, फेडरेशन ऑफ इडिया ओहायो गर्वनस मीडिया पुरस्कार ओहायो यू एस ए

प्रकाशित रचनाएँ :-

उपन्यास

रेत के घर (भावना प्रकाशन)

जलाक (आधारशिला प्रकाशन)

सूरज नहीं उगेगा (बिशन चंद एंड संस)

कविता संग्रह

शिखंडी युग (अर्चना प्रकाशन)

बराह (वाणी प्रकाशन)

यह युग रावण है (अयन प्रकाशन)

मैं कौण हां -पंजाबी (चेतना प्रकाशन)

मुझे बुद्ध नहीं बनना (अयन प्रकाशन)

कहानी संग्रह

उत्तरायण (नमन प्रकाशन)

प्रकाशानाधीन

न भेज्यो विदेस (उपन्यास)

पता

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

246 Stratford Drive

Broadview Hts, Ohio 44147 U. S. A.

(440)717-1699

sudarshansuneja@yahoo.com

। दोनों एक-दूसरे को काम में सहायता करते थे । वह एक अच्छा स्टेनो था । माँ तब काम सीख रही थी,नई-नई थी नौकरी में । दोनों जैसे एक-दूसरे के पूरक बन गए थे । उसने माँ को उनके काम में माहिर बना दिया था ।

एक दिन वह किसी कार्यवश मेरे पिता को ढूँढ़ता हुआ घर आ गया । गेट पर चौकीदार नहीं था शायद । माँ ने ही गेट खोला । वह माँ को देखकर भौंचक्क रह गया । किसी को मालूम नहीं था कि मालवीय ने शादी की है- वह भी दूसरी और अपने ही दफ्तर की स्टेनो के साथ । दोनों कुछ क्षण एक दूसरे को जैसे सकते में ताकते रहे । कई प्रश्नों के उत्तर मिल गए थे कृष्ण को उस दिन । माँ का अचानक नौकरी छोड़ना, मालवीय का ज़्यादा समय तक, इस शहर में रहना, बार-बार छुट्टी लेना आदि ।

उस दिन माँ ने अपनी पुरानी दोस्ती के ढब कृष्ण से भागने के लिए मदद मांगी । कृष्ण ने प्रण लिया कि वह उसे वहाँ से निकलने में अवश्य सहायता करेगा ।

फिर कुछ ही दिन में कृष्ण ने अपने पैसों से टिकट खरीदकर माँ को एयरपोर्ट पहुँचा दिया । माँ ने बाकी काम स्वयं बीच-बीच में फ़ोन से और चौकीदार से करवा लिये थे । कृष्ण ने चौकीदार को धमकी दी थी कि अगर उसने मालवीय को कुछ भी बताया तो मालवीय ही उसे मार डालेगा कि वह उससे मिला हुआ था । उसने अपनी जुबान बन्द रखी और माँ वहाँ से भागने में सफल हो गई ।

बाद में मौसी से भी सम्बन्ध फीके होते चले गए । मौसी आज तक इस बात से नाराज़ है कि उसने पाल-पोस कर बड़ा किया और इतने बड़े राज़ से उसे अनजान रखा गया । पर माँ की मजबूरी थी । मौसी मेरे पिता की भक्त थी, उनके पैसे के कारण और शादी में कुछ न लेने-देने के कारण । उन्होंने मौसी को भी कितना बड़ा धोखा दिया था कुछ न बताकर कि यह उनकी दूसरी शादी है ।

उस सबके बाद आज इतिहास के खंडहर का यह टुकड़ा मेरे सामने अपना मुँह बाए खड़ा है- जो मुझसे जवाब माँग रहा है ।

इन्टरनेट पर मेरे पिता का संदेश था कि वे अपनी पूर्व पत्नी और लगभग बीस बरस की बेटी को ढूँढ़ रहे हैं, जो हुआ सो हुआ - उसे भूल कर इस संदेश का जवाब दो और बताओ कि तुम लोग कहाँ हो, मैं मिलना चाहता हूँ ।

बचपन से लेकर आज तक जो कहानियाँ माँ से सुनी हैं, वह जैसे एक पल में तिरोहित हो गई हैं । वह सोचती है जो माँ कहती रही है, उसे किसने देखा है, कौन जानता है, उनमें कितनी सेचाई है ? आज अचानक वर्षों की एक दबी चिंगारी उसके अन्दर पूरी तरह भभक उठी है ।

आज उसे लगता है कि उसका पिता शायद दुनिया का सबसे अच्छा व्यक्ति है क्योंकि वह उसका पिता है । माँ की सारी बातें एकाएक बेमानी लगती हैं । इस एक छोटी सी सूचना ने उसके अन्दर जैसे कुहराम मचा दिया है ।

उसने माँ को बिना बताये उसका जवाब लिख दिया है, अपना नाम, पता-ईमेल आदि सब कुछ और साथ ही मिलने की इच्छा!

कहानी

सफ़ेद चादर

अनिल प्रभा कुमार
(अमेरिका)

''बस अब यह पाइन-ब्रुक वाला रास्ता ले लीजिए। ट्रैफ़िक - लाइट पर बाएँ, अगली ट्रैफ़िक - लाइट पर दाएँ, और इसी सड़क पर सीधे चलते जाओ जब तक कि।''

उनकी व्यस्तता देख कर वह रास्ता बताते-बताते रुक गई। वह बड़ी एकाग्रता से स्टियरिंग सम्भाले थे। यूँ तो वह अब स्थानीय सड़क पर ही थे और वक्त था दोपहर दो बजे का। ट्रैफ़िक ज़्यादा ही लगता था और वह भी तेज़ गति से चलता हुआ। लेन एक ही थी और वह भी तंग सी। विपरीत दिशा से भी उतनी ही तेज़ी से कारें, ट्रक सभी सिर पर चढ़े आते लग रहे थे। गाड़ी चलाने में ध्यान केन्द्रित करने की ज़रुरत थी।

अचानक, एक हिरण विपरीत दिशा से आते एक छोटे ट्रक से टकराया। एक भारी भूरी गेंद की तरह उछला। ठीक उनकी कार के दाएँ बम्पर से दोबारा टकराया और फिर घास की पट्टी पर गिर पड़ा। हवा में उठी उसकी टाँगों में कम्पन हुआ और वह सड़क किनारे लगी घास और झाड़ियों के बीच लुढ़क गया।

वह कार में आगे दायीं ओर पैसेन्जर सीट पर ही बैठी थी। हिरण ठीक उसके आगे ही गिरा था। सब कुछ इतना अचानक हुआ कि उसकी चीख थरथरा कर, काँपती सी आवाज़ में फिसल गई। ब्रेक लगाने का अवसर ही नहीं मिला । उसने डरते हुए साइड मिरर से देखा। हिरण में कोई गति नहीं हो रही थी । ख़ून भी उसे कहीं नहीं दिखा। उसने गहरी साँस ली। मन ही मन प्रार्थना की, प्लीज़ प्रभु, यह अब तड़पे नहीं।

ज़रा सा आगे चलकर, खुली जगह देख उन्होंने कार अंदर मोड़ कर रोक ली। वह वहीं अन्दर बैठी रही। वह कार का निरीक्षण करने लगे। नम्बर - प्लेट का दायीं ओर का हिस्सा धक्के से अन्दर धँस गया और हैड- लाइट में दरार पड़ गई थी। सफ़ेद-सलेटी कार पर हिरण के भूरे-पीले बालों की परत चिपक गई। वह उँगली से छू कर कुछ देखने लगे तो वह चिल्लायी ''छूना मत''।

उन्होंने माथे पर त्यौरियाँ डाल कर उसकी तरफ़ सिर्फ़ देखा, कहा कुछ नहीं।

वह झेंप गई शायद आवाज़ ज़्यादा ही ऊँची निकल गई थी।

''वोह, वोह, मेरा मतलब था कि जंगली हिरण के शरीर में 'टिक्स' होते हैं न। भयानक लाइम की बीमारी हो सकती है उससे''।

वह कार के सामने झुक कर मुआयना करने लगे, नुक्सान का अन्दाज़ा लगाने के लिए। वह शायद किसी के घर का ड्राइव-वे था। तीन लोग बाहर निकल आये । उनके तेवरों से वे समझ गए कि उन्हें इस तरह उनके कार रोके जाने पर आपत्ति थी।

''हमारी कार से अभी- अभी एक हिरण टकरा गया है, इसलिए ज़रा रुक कर देख रहे हैं। बस, चलते हैं।'' उन्होंने माफ़ी सी माँगते हुए अंग्रेज़ी में कहा।

दोबारा कार में बैठते ही उन्होंने एक सवाल यूँ ही उछाला- ''क्या तुम सोचती हो कि हमें पुलिस को सूचना दे देनी चाहिए?''

''मालूम नहीं।''

''वैसे अगर किसी आदमी को चोट लग जाए तो सूचना न देना अपराध माना जाता है।''

''यहाँ सड़कों पर इतने जानवर मरे हुए पाए जाते हैं, तुम समझते हो कि इन सबकी रिपोर्ट होती होगी?''

''मेरा नहीं ख्याल।''

पहली बार इस नई जगह पर आए थे और देरी होने के विचार से थोड़ा तनाव बढ़ रहा था। वह सड़क पर डॉक्टर ली के नाम का बोर्ड ढूँढ़ने लगे। उसके कंधे में बहुत दिनों से दर्द चल रहा था। दवा तेज़ थी और कोई ख़ास फ़ायदा भी नहीं हुआ। थैरेपी भी करवा कर देख ली। बस आराम आ ही नहीं रहा था। कुछ मित्रों ने सुझाव दिया - डॉक्टर ली का। चीनी आदमी है, नया- नया अमरीका में

आया है। अंग्रेज़ी नहीं बोल पाता पर पुरानी चीनी विद्या ''टुइना थैरेपी'' से मालिश करता है। ऊर्जा के प्रवाह को नियमित कर, ज़्यादातर बीमारियाँ ठीक कर देता है। आज वही तीन बजे डॉक्टर ली से मिलना था।

मेज़ पर पेट के बल लेट कर चेहरा उसने एक बड़े से गोल छेद के ऊपर रख लिया - साँस लेने के लिए।

पाप हो गया, हत्या हो गई। हिरण को भी एक बार ट्रक से टकरा कर फिर दूसरी बार उन्हीं की कार से टकराना था क्या ? ठीक उसी के चेहरे के सामने।

''रिलैक्स'' डॉक्टर ली को इतनी अंग्रेज़ी आती लगती थी।

वह उसके कंधे पर मालिश कर के गाँठें ढूँढने लगा। एक जगह उसने गाँठ पकड़ ली। अँगूठे और हथेली के पूरे दबाव से मसल दिया।

वह दर्द से बिलबिलाई।

''ओल्ड'' डॉक्टर ली ने सफ़ाई दी।

पास में उसके पति बैठे थे, चुपचाप देखते हुए, कुछ और ही सोचते हुए।

''तुम्हारी पुरानी सोचने की आदत ने जो गाँठें डाल दी हैं, उनको सुलझाने की कोशिश कर रहा है।''

''यह कोई मज़ाक नहीं'', वह फिर दर्द से हिली।

डॉक्टर ली ने शायद अपना पूरा वज़न ही अपने हाथों पर डाल कर उसके कंधों को दबा दिया।

अगर हिरण बंपर से न टकरा कर उनके हुड पर ही गिरता तो? अगर उसी के उपर आकर हिरण गिर जाता तो? कितना वज़न होगा?

उसकी बोझ से साँस घुटने लगी।

डॉक्टर ली ने उसकी पीठ थपथपाई और कहा ''ओ.के''।

उसके पति से बोला - ''शी नो रिलैक्स''

''आई नो'', जवाब सुनकर भी वह पहली बार नहीं चिढ़ी ।

वापिसी में उन्होंने पूछा -''कैसी रही मालिश?''

''बदन तो कुछ हल्का हो गया है, पर...।'' उसने जानबूझ कर वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

''शुक्र करो कि कुछ नहीं हुआ।''

''कुछ नहीं हुआ?''

''मतलब बच गये।''

''कहाँ बच पाया?''

''जानती हो अगर हिरण विंड- शील्ड पर पड़ता और वह टूट कर हमारे ऊपर पड़ती तो इस वक्त हम अस्पताल में होते ।''

''हमें शायद हिरण को भी अस्पताल ले जाना चाहिए था।''

''तुम्हारा दिमाग़ खराब हो गया है ।''

''दिन- दहाड़े, इतनी दौड़ती सड़क पर वह तीर की तरह छूट कर क्यों आया होगा?''

''क्योंकि हिरण बेवकूफ़ होते हैं।'' वह खीझ रहे थे।

शायद भूखा होगा, उसने सोचा।

''नई गाड़ी है, अभी पिछले साल ही तो ली है। एक्सीडेंट हो गया। नुक्सान तो हुआ ही है न? पता नहीं इन्श्योरेन्स कम्पनी कितना भरपाया करती है और कितना अपनी जेब से देना पड़ेगा? ब्रेक तक लगाने का मौका नहीं था। बेवकूफ़ कहीं का।''

उसे लगा कि सोच के साथ - साथ अब उनकी खीज भी बढ़ रही थी। भूख भी तो लगी होगी, उसे ध्यान आया। मालिश करवानी थी न, एक गिलास 'समूदी' पी कर ही चली थी वह।

''मुझे नहीं पीनी यह फलों वाली लस्सी'', कह कर उन्होंने तो वह भी नहीं ली थी।

''चिन्ता मत करो। घर पहुँचकर पहले खाना खाते हैं, फिर सोचेंगे कि आगे क्या करना है?'' उसने सुझाव दिया।

''नहीं, पहले ऑटो बॉडी- शॉप चलकर कार दिखानी होगी। क्या पता कार इस हालत में चलानी भी चाहिए या नहीं?''

''आप मुझे फिर से टेंशन दे रहे हैं, सारी की कराई मालिश का असर हवा हो गया।'' वह वाकई तनाव- ग्रस्त होती जा रही थी।

''कुछ सुनाई देता है, ज़रा ध्यान से सुनो।'' वह भी तनाव में थे।

कार जहाँ भी लालबत्ती पर रुक कर फिर चलती तो खटाक की आवाज़ होती, ठीक उसके नीचे वाले पहिए की तरफ़।

''अच्छा चलो, पहले बॉडी-शॉप ही चलो।'' वह चुप करके बैठ गई।

बॉडी-शॉप वाले ने घूम-फिर कर हुड खोला। ऊपर-नीचे झाँककर, अच्छी तरह से मुआयना

डॉ. अनिल प्रभा कुमार

जन्म:
दिल्ली में।
शिक्षा:
पीएचडी: ''हिन्दी के सामाजिक नाटकों में युगबोध'' विषय पर शोध।
प्रकाशित कृतियां:
'ज्ञानोदय' के 'नई कलम विशेषांक में 'खाली दायरे' कहानी पर प्रथम पुरस्कार पाने पर लिखने में प्रोत्साहन मिला। कुछ रचनाएँ 'आवेश', 'संचेतना', 'ज्ञानोदय' और 'धर्मयुग' में भी छपीं। न्यूयॉर्क के स्थानीय दूरदर्शन पर कहानियों का प्रसारण।
पिछले कुछ वर्षों से कहानियाँ और कविताएँ लिखने में रत। कुछ कहानियाँ वर्त्तमान - साहित्य के प्रवासी महाविशेषांक में छपी है।
हंस, अन्यथा, कथादेश, हिन्दी चेतना, गर्भनाल, लमही,शोध-दिशा और वर्त्तमान- साहित्य पत्रिकाओं के अलावा, ''अभिव्यक्ति'' के कथा महोत्सव-२००८ में ''फिर से '' कहानी पुरस्कृत हुई।
''बहता पानी'' कहानी संग्रह भावना प्रकाशन से प्रकाशित।
नया कविता- संग्रह प्रकाशन के लिए लगभग तैयार।
संप्रति:
विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यू जर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य का प्राध्यापन और लेखन।
संपर्क:
119 Osage Road,
Wayne NJ
07470.USA
Email
akskyvy@hotmail.com

किया।

''यह लोग करेंगे क्या?'' उसने पति से अपनी भाषा में पूछा।

''नुकसान हुए हिस्से को फेंक देंगे। नया हिस्सा मंगवा कर लगा देंगे। पता ही नहीं लगेगा कि कभी कुछ हुआ भी था।''

पति उस आदमी के साथ अन्दर दफ़्तर में लिखत-पढ़त करने चले गए।

वह खिड़की नीचे करके वहीं बैठी रही। उस बुझे से दफ़्तर के बाईं ओर टायरों का ढेर लगा था और दाँयी ओर कारों के टूटे, जले या ज़ंग खाये, मुड़े-तुड़े हिस्से थे - कोई दरवाज़ा कोई हुड या कोई बम्पर बड़ी बेतरतीबी से फेंके गए थे। पता नहीं कहां से दिमाग़ में एक ख़्याल आया, भगवान राम जब दण्डक-वन से गुज़र रहे होंगे तो यूँ ही राक्षसों द्वारा मारे गए ऋषि - मुनियों के अस्थि-समूह के ढेर देखे होंगे। उसने मुँह फेर लिया।

अब उस आदमी ने उसकी खिड़की के नीचे झुक कर लोहे का कोई पुर्ज़ा बाहर घसीटा और उसके पति के हाथ में पकड़ा दिया।

''धक्के से अलग हो गया था, यही आवाज़ कर रहा था। वैसे गाड़ी घर ले जा सकते हो।''

पति के माथे पर गहरे बल थे। फिर से बैठे और कार चला दी।

''क्या कहता है?'' उसने कोमलता से पूछा।

''अभी तो यूं ही अन्दाज़ से खर्चा बताया है, दो हज़ार डॉलरस का।''

''दो हज़ार डॉलर्स इस्स के?'' उसने अविश्वास से कहा।''

''घर चलकर इन्श्योरेन्स कम्पनी को फ़ोन करता हूं। देखो? 'कोलिज़न' तो सिर्फ़ हज़ार डॉलर्स का ही है बाक़ी हजार ज़ेब से देना पड़ेगा। ऊपर से बीमे की दर पता नहीं कितनी और बढ़ जाएगी? बैठे-बिठाए चूना लग गया।'' वह अभी भी उधेड़-बुन में लगे थे।

गाड़ी गैराज के अन्दर ले जा रहे थे तो उसने टोका, ''गाड़ी बाहर ही रहने दो, आज अन्दर मत ले जाना।''

''क्यों?'' वह असमंजस में थे।

''बस कहा न।'' गाड़ी रुकते ही वह घर के अन्दर भागी। जल्दी से नहाकर, कपड़े बदल नीचे आई।

वह हिरण भी शायद कुछ न मिलने पर, जंगल के इस पार जान की ज़ोखिम उठाकर, आबादी में घुसने निकल पड़ा होगा। नहीं तो हिरणों का झुंड रात को ही कुछ खाने को निकलता है। खबरों में था कि न्यू-जर्सी में हिरणों की आबादी बहुत बढ़ गई है।

वह भोजन की प्रतीक्षा में मेज़ पर बैठे थे, कागज़ के आँकड़ों में उलझे हुए।

''आप भी जल्दी से नहा लीजिए।''

''इस वक्त?''

''वह हिरण मर गया है न।'' उसने धीमी आवाज़ में आँखे नीची करते हुए कहा।

''मैने मुँह-हाथ धो लिया है। खाना देना हो तो दो।'' लगा उन्हें गुस्सा आना शुरू हो गया था। उसने चुपचाप कल का बचा खाना माइक्रोवेव में गरम करना रख दिया। पीटा- ब्रैड टोस्टर-अवन में डाल कर वह जल्दी से ऊपर आ गई। मंदिर में जोत जला दी -''प्रभु, उस हिरण की आत्मा को शांति देना।''

वह फ़ोन पर व्यस्त थे। बात करते हुए सब सूचनाएँ नोट करते जाते थे। फिर दूसरा और फिर तीसरा फ़ोन।

आख़िर वह क्लान्त से आकर उसके पास बैठ गए। उसे उन पर करुणा-सी आई। सारे झंझटों से निपटना तो मर्दों को ही होता है न।

''चाय बनाऊँ ?'' उसने उनका चेहरा पढ़ते हुए पूछा।

उन्होंने हामी में सिर हिलाया ।

वह हिरण भी शायद कुछ न मिलने पर, जंगल के इस पार जान की ज़ोखिम उठाकर, आबादी में घुसने निकल पड़ा होगा। नहीं तो हिरणों का झुंड रात को ही कुछ खाने को निकलता है। खबरों में था कि न्यू-जर्सी में हिरणों की आबादी बहुत बढ़ गई है। तो? आबादी बढ़ जाए तो क्या जान की क़ीमत कम हो जाती है?

वह बैठ गई । किसे झुठला रही है? यहाँ एक भी आदमी मर जाए तो कितना हल्ला होता है और वहाँ बाक़ी दुनिया में रोज़ कितने लोग मरते हैं? आँकड़े, नम्बर्स बस! जिसका वह एक नम्बर होता है, कभी उसकी देह में जीकर तो देखो।

पता नहीं क्यों वह उखड़ती जा रही थी।

''क्या तुम जानना चाहती हो कि मेरी इन्श्योरेन्स वालों से क्या बात हुई?''

वह सुनने के लिए बैठ गई।

''क़िस्मत से यह दुर्घटना 'कोलिज़न' की श्रेणी में नहीं आती क्योंकि इसमें किसी की ग़लती नही थी। 'कॉम्परिहैन्सिव' के वर्ग में आती है। जिसमें तुम्हारी ग़लती न हो, फिर भी नुक्सान हो जाए।''

''तो?''

''तो इन्श्योरेन्स की दर नहीं बढ़ेगी। एक हज़ार डॉलर्स हमें अपनी जेब से देने पड़ेंगे बाक़ी की रक़म हमारी इन्श्योरेन्स भर देगी।''

''हिरण के शव का क्या होगा?'' वह पूछ नहीं पाई।

''ऑटो बॉडी -शॉप वाले से भी बात कर ली है। कल तुम्हें जल्दी उठकर मेरे साथ चलना होगा। मेरी गाड़ी ठीक होने के लिए छोड़ आएँगे और तुम्हारी गाड़ी में दोनो लौट आएँगे।''

''अच्छा।'' कह कर वह उठ गई।

सिर में दर्द तेज़ होता गया, जी मतलाने लगा। पहले भी एक बार उसने हाइवे पर किसी जीप के आगे बंधे मृत हिरण को देखा था। कोई निर्दोष जानवर का शिकार कर, तग़मे की तरह उसे अपनी जीप के आगे बाँध, सारी दुनिया कि दिखाते हुए भागा जा रहा था। एक झलक ही मिली थी उसे, हिरण की लटकी हुई गर्दन की। हिरण उसकी चेतना पर टँगा रह गया। और आज यह सब कुछ अनजाने में ही हो गया।

वह अभी तक कुछ-कुछ सकते में थी। एकदम अचानक, इतने अचानक? क्या ऐसे ही होता है

एक धुन्ध में लिपटी सड़क है। दिल्ली वाले उसके घर के सामने वाली। हल्का सा अंधेरा है और सड़क सुनसान। अचानक जैसे किसी के इशारे पर दोनों ओर की सड़कों पर कारों, स्कूटरों और बसों का भारी रेला दौड़ने लगता है। दोनों सड़कों के बीच एक छोटी सी पटरी है और उसी पटरी पर ट्रैफ़िक सिगनल। एक बस तेज़ी से दौड़ती हुई आती है। तरकश से छूटे तीर की तरह मुकेश उससे टकराता है। उसका शरीर थोड़ा सा हवा में ऊपर उछलता है और फिर बस के पहियों के नीचे।

सब कुछ? ऐसे ही एक क्षण कोई दौड़ता हुआ प्राणी और दूसरे ही पल किनारे पड़ी लाश!

ऐसे ही क्या मुकेश भी दौड़ कर सड़क पार करने लगा होगा, तेज़ आती बस ने उसे ऊपर उठा कर, नीचे पटका होगा और फिर ....।

वह घबरा कर खड़ी हो गई। ढेर सारे पानी के साथ टॉयनाल की दो गोलियाँ निगल लीं। उसे कुछ नहीं सोचना है इस बारे में। यह बात तो उसने चेतना के बहुत गहरे गर्त्त में धकेल दी थी। आज उभर कैसे आई।

हिरण की आँखें नही दिखीं। मुकेश की आँखों जैसी गहरी काली होंगी?

''सिर कुचल गया था।'' बड़ी भाभी ने बताया।

''नहीं जानना है उसे।'' वह चीख़ कर बाहर भागी थी।

''कोई उससे मुकेश की मौत के बारे में बात न करे।'' पति ने उसके दिल्ली पहुंचने से पहले ही उसके घर-वालों को आगाह कर दिया था।

उस दिन भी तो वह सो ही रही थी। पति उसके सिरहाने आकर बैठ गए। अभी जागती दुनिया में लौटी नहीं थी।

''मुकेश की मौत हो गई है।''

वह उठ कर बिस्तर पर बैठ गई। उसके, उससे भी छोटे भाई की अचानक? जैसे वह उनकी बात का मतलब समझने की कोशिश कर रही हो।

''एक्सीडेंट'' उन्होंने कहा।

वह सुन्न सी बैठी रही। मां तो नही रहीं, पर बाबूजी?

''मैं दिल्ली जाउंगी।'' उसने उठने की क़ोशिश की।

''क्या करोगी जाकर? अब तक तो उसकी बॉडी भी.....'' उसने पति के मुँह पर कसकर हाथ रख दिया ।

''मत कहो मेरे भाई को बॉडी...'' लगा जैसे ख़ून का हर क़तरा चीखें मारने लगा। फूट-फूट कर रो पड़ी।

फिर शांत हो गई। पेट में बहुत ज़ोर से ऐंठन होने लगी। फिर सिर में भयानक दर्द। दर्द असहनीय था।

अस्पताल मे दर्द को कम करने वाला इंजंक्शन दिया गया। ऐसा सदमे से हो जाता है। इस बारे में कोई ज़्यादा बात न करे।

वह ख़ुद भी बात नहीं करती। शरीर की भयानक पीड़ा उसे मानसिक पीड़ा से बरगला कर दूसरी ओर ले गई थी।

वह उखड़ी -उखड़ी सी रात के खाने की तैयारी करने लगी। सब्ज़ी काटते हुए पूछा -''हिरण शाकाहारी होते हैं न?''

''तुम अभी तक उसके बारे में सोच रही हो?''

''आप क्या सोच रहे हैं?''

''शुक्र कर रहा हूँ कि इन्श्योरेन्स की दर नहीं बढ़ेगी। यह जो एक हज़ार की चोट लगी है, इसकी छुट्टियाँ मना सकते थे।''

उसने उन्हें कातरता से देखा। कुछ भी कह नहीं पाई। बस, जैसे सब संतुलन गड़बड़ा गया हो।

उन्हें खाना खिला कर वह सोने चल दी। थक गई है।

करवटें बदलती रही। मन इतना अशांत क्यूं? आँखें बन्द कर मंत्र बुदबुदाती है। ध्यान कहीं नहीं लगता।

एक धुन्ध में लिपटी सड़क है। दिल्ली वाले उसके घर के सामने वाली। हल्का सा अंधेरा है और सड़क सुनसान। अचानक जैसे किसी के इशारे पर दोनों ओर की सड़कों पर कारों, स्कूटरों और बसों का भारी रेला दौड़ने लगता है। दोनों सड़कों के बीच एक छोटी सी पटरी है और उसी पटरी पर ट्रैफ़िक सिगनल। एक बस तेज़ी से दौड़ती हुई आती है। तरकश से छूटे तीर की तरह मुकेश उससे टकराता है। उसका शरीर थोड़ा सा हवा में ऊपर उछलता है और फिर बस के पहियों के नीचे।

बाबूजी दूर अपने घर की बाल्कनी पर खड़े होकर देख रहे हैं। लोगों की भीड़, शोर, पुलिस की सीटियाँ, सड़क पर ख़ून ही ख़ून।

एक बूढ़ा बाप देख रहा है पुलिस वालों ने उसके जवान बेटे पर सफ़ेद चादर ओढ़ा दी।

ड्रॉइवर दिन -दहाड़े शराब पीकर गाड़ी चला रहा था। लाल बत्ती भी फ़ुर्ती से पार कर गया।

''उसने जान-बूझ कर चलती बस के आगे कूद-कर आत्म-हत्या की होगी।'' फिर से सफ़ेद चादर ओढ़ा दी गई।

सफ़ेद चादर ने उसकी जवान पत्नी और दोनो बच्चों को भी ढक दिया। चादर फैलती जा रही थी। कुछ नही दिखता। चारो तरफ़ अंधेरा ही अंधेरा। सारे शहर की बत्तियाँ गुल हो गईं। सब जगह बस धुँआ ही धुँआ। उसकी साँस घुटने लगी।

उसने घबरा कर आँखें खोल दीं। साँस धौंकनी की तरह चल रही थी। एयर-कंडीशन्ड कमरे में पंखा भी चल रहा था। इसके बावजूद बदन पसीने से भीग गया।

वह उठ कर बैठ गई, बैठी रही। यह चेतना के गहरे गड्ढे में दफ़न किया हुआ सच, सपने में कैसे उतर आया?

पति दरवाज़े पर आकर खड़े हो गए।

''जल्दी से तैयार होकर नीचे आ जाओ। गाड़ी छोड़ने में देर हो रही है।''

उसने मुँह-हाथ धोया। नीली जीन्स के ऊपर सफ़ेद टी-शर्ट पहन ली। बाल कस कर पॉनी-टेल में बांधे।

उसके बेरंगत चेहरे को देखकर वह चौंके। लगा जैसे वह किसी शव -यात्रा पर जाने के लिए तैयार होकर आई हो।

''तुम ठीक हो न?'' उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रख दिए।

''हिरण के ऊपर सफ़ेद चादर डाल देनी चाहिए थी।''

वह झुंझला कर कुछ कहने ही वाले थे पर उसका चेहरा देख कर चुप कर गए।

●

कहानी

बाँझ

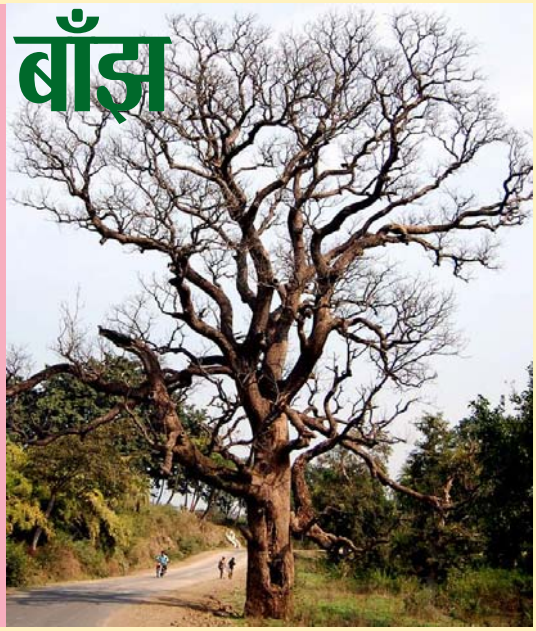

शाहिदा बेगम 'शाहीन'
(भारत)

आज सुबह से ही मौसम कुछ धुँधला सा था और आकाश पर घने बादल छाए रहे थे । दोपहर के बाद अचानक बरसात होने लगी, होते- होते बरसात ने तूफ़ान का रूप धारण कर लिया । मूसलाधार पानी बरसने लगा । तकरीबन दो घंटे बाद बारिश के ज़ोर में कुछ कमी आई ।

संध्या अपने घर के बाहर वाले बरामदे में जमा हुआ बारिश का पानी उठा कर बाहर फेंक रही थी कि बरसात की रिम-झिम के साथ-साथ एक विचित्र सी आवाज़ भी उसके कानों में पड़ी ..जैसे कोई दर्द भरा आलाप हो । उसने गरदन उठा कर बाहर देखा सड़क पर पानी इतने ज़ोर-शोर से बह रहा था, मानो बाढ़ आ गई हो ।

बीच सड़क पर एक आवारा कुतिया पानी में सराबोर, आँखें बंद किए आकाश की ओर मुँह उठाए निरंतर रोए जा रही थी । लगता था कि बरसात के साथ ही उसकी गुहार भी आरंभ हो गई थी । झकझोर देने वाले इस आर्तनाद को सुनकर कई महिलाएं और बच्चे भी अपने घरों से बाहर झाँकने लगे थे ।

दरअसल इस कुतिया ने सड़क के किनारे पर स्थित एक सूखी मोरी में बच्चे दिए थे, अंदर से चियाँउ चियाँउ की आवाज़ें आया करती थीं जो गली के बच्चों के लिए कुतूहल का केंद्र बने हुई थीं । मोरी के ऊपर बड़ी- बड़ी पत्थर की सिलें बिछी हुई थीं, कुतिया रेंगती हुई उसके अंदर आया जाया करती थी ।

बरसात का पानी मोरी के ऊपर से होकर बह रहा था और वह मूक प्राणी अत्यंत हृदय विदारक एवं निस्सहाय अवस्था में अपने बच्चों की मृत्यु का मातम कर रही थी । इस आर्तध्वनि के कारण हसीन मौसम भी द्रवित हो उठा था ।

कुछ लड़के बरसते पानी की परवाह न करते हुए घरों से बाहर निकल आए और उन सब ने मिल कर वह सिल हटाई जहाँ पिल्लों के होने की संभावना थी । लेकिन वह गड्ढा पानी से लबालब भरा हुआ था । एक लड़के ने अंदर हाथ डाल कर टटोला और मायूसी में सिर हिला दिया, वहाँ कुछ नहीं था । दूसरी और फिर तीसरी सिल हटाई गई परंतु नाकामी ही हाथ लगी ।

कुतिया का रोना बदस्तूर जारी था जिसे सुनकर वहाँ कई लोग इकट्ठा हो गए थे । चौथी सिल के हटते ही लड़के ख़ुशी से चिल्ला पड़े । इर्द-गिर्द कचरा जमा हो जाने के कारण वह गड्ढा केवल आधा भरा था, अंदर दो पिल्ले पानी में खड़े थर-थर काँप रहे थे । लड़कों ने लपक कर उन्हें उठा लिया, दो और पिल्ले पानी में मरे पड़े थे ।

पिल्लों को देखते ही उनकी माँ पागलों की भांति लड़कों के चारों ओर चक्कर काटने लगी । सामने वाले घर के बरामदे में टाट का एक टुकड़ा बिछा कर पिल्लों को उसपर रख दिया गया । कुतिया उन्हें चूमने और चाटने लगी और वे कूँ कूँ करते हुए उसके पेट के नीचे घुसने लगे । इस अनोखे से अद्भुत दृश्य को देख सब के चेहरे तृप्ति एवं आनंद से खिल उठे ।

"संध्या, ओ संध्या..अरी कहाँ मर गई!"

संध्या चौंक पड़ी और "आई माँ जी" कहती हुई घर के अंदर दौड़ गई ।

दरअसल इस विस्मयकारक घटना के सम्मोहन ने उसे बाँध लिया था और यह भी भुला दिया कि अंदर माँ जी जाग गई होंगी, आँख खुलते ही उनके सामने शाम की चाय पेश करनी है यदि इस में एक आध मिनट की भी देरी हो जाती तो संध्या को सौ बातें सुननी पड़ती थीं जो अंत में उसके बाँझपन पर आकर टिक जातीं । ज़रा-ज़रा सी भूल पर भी उसे दिन में बीसियों बार यही सब कुछ सुनना पड़ता था ।

विवाह के तीसरे वर्ष भी जब वह इस परिवार को वारिस न दे पाई तो उसकी सास की धीरज की सीमा ख़त्म होने लगी -

"अपनी बंजर कोख को लेकर आने के लिए क्या इसे यही घर मिला था?.. इस बुढ़ापे में अब और इंतज़ार नहीं होता, मुझे भी अरमान है अपनी गोद में पोते खिलाने का । हमारे बाद परिवार का नाम मिट ही जाएगा क्या! कोई तो नाम लेवा हो । इसके भरोसे बैठे रहे तो फिर हो चुका । मैं ने अपने बेटे के लिए एक और लड़की देखी है, भगवान ने चाहा तो देखना अगले वर्ष ज़रूर हमारे आँगन में पोता खेलेगा ।"

शहर के तक़रीबन हर एक अस्पताल में संध्या की जाँच और चिकित्सा भी हो चुकी थी । विशेषज्ञों एवं वैद्यकों ने बारंबार यही बताया था कि जाँच स्त्री पुरुष दोनों की होनी चाहिए । लेकिन उसके पति ने सुनी अनसुनी कर दी । संध्या में इतनी हिम्मत कहाँ कि यह बात पति अथवा सास के सामने अपनी ज़ुबान पर भी ला सके, चुपचाप सब कुछ सुनती और सहन करती रहती ।

आख़िरकार वह घड़ी आ ही गई जब संध्या को ख़ुद अपने हाथों पति के लिए नई सेज सजानी पड़ी, दिल पर पत्थर रख कर सौतन का स्वागत करना पड़ा । अपशकुन की आशंका से आँसू की एक बूंद भी गिराने की मनाही थी । रात गए, अंधेरे कमरे में अकेली लेटी हुई दिल का दर्द नैनों के रास्ते बाहर निकालने लगी ।

नैनतारा के इस घर में क़दम रखते ही उसकी सास के कानों में किलकारियाँ गूंजने लगी थीं । नई बहू की कुछ ज़्यादा ही आवभगत की जा रही थी । सुबह शाम उसकी सेवा संध्या को करनी पड़ती थी ।

सवेरे उठकर उसके लिए नाश्ता बनाना, उसके कपड़े धोना, फिर शाम को स्कूल से लौटने से पहले उसके लिए चाय नाश्ता भी तैयार रखना पड़ता था । और तो और सास के आदेश पर घर के समीप वाले टैलरिंग स्कूल जाकर सिलाई, कढ़ाई एवं बुनाई भी सीखनी पड़ी थी । आजकल वह एक छोटा सा ऊनी सेट तैयार कर रही थी ।

साधारण से नैन नक़्श वाली नैनतारा किसी स्कूल में पढ़ाती थी, आयु में संध्या से दो ढाई वर्ष बड़ी भी थी । संध्या का भोला भाला सुंदर मुखड़ा, मुग्ध व्यवहार और घुटी घुटी सी हँसी उसे आकृष्ट करती थी, अक्सर सास की अनुपस्थिति में उसे अपने पास बिठा लेती । दोनों मिलकर ख़ूब बातें करतीं और दिल खोलकर हँसतीं, लेकिन सास के आने की आहट पाते ही संध्या कमरे से भाग खड़ी होती । नैनतारा ने बातों- बातों में संध्या से उसकी पिछली ज़िंदगी के बारे में पूरी जनकारी प्राप्त कर ली थी ।

अनाथ संध्या के इस घर में बहू बनकर आने के पीछे भी एक रहस्य था । हालांकि उसके मामा मामी ने उसे पाल पोसकर बड़ा किया था, उसके माता पिता गाँव में एक बड़ा सा भू भाग उसके नाम छोड़ गए थे, जिस से वार्षिक आय के अतिरिक्त हर सप्ताह गाँव से दूध, मक्खन, फल, सब्ज़ी, तरकारी आदि भी आया करता था ।

लेकिन यहाँ संध्या की हैसियत एक नौकरानी से भी बदतर थी, सिर्फ़ इस लिए कि वह इस घर को एक वारिस न दे पाई थी । उसके मामा मामी ठहरे गाँव के सीधे सादे लोग, 'भाग्य का लेखा' कहकर संध्या को अक्सर धीरज धारण करने की सलाह देते रहते थे । सब कुछ देखते हुए भी अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की उन में हिम्मत नहीं थी ।

नैनतारा को संध्या पर दया आती थी । अपनी सास का दोग़ला व्यवहार उसकी तेज़ नज़रों से छुपा नहीं था । अच्छी तरह जानती थी कि वह संध्या को उसके मासिक वेतन तथा भविष्य में आने वाले वारिस की ख़ातिर सिर आँखों पर बिठाए रखती है, वरना तो सब दिखावा था ।

पति देव घरेलू मामलों में बिल्कुल हस्तक्षेप न करते थे, सब कुछ माँ पर छोड़ रखा था । लेकिन जब कभी पानी सिर से ऊपर हो जाता तो नैनतारा ही संध्या का पक्ष लेती ।

नैनतारा के स्कूल में छुट्टियाँ चल रही थीं । वह मायके गई हुई थी । इधर बेटे के आगे माँ का पुराना राग फिर से आरंभ हो गया था । उठते बैठते आग्रह किए जा रही थी कि ''शादी को एक वर्ष बीत चुका लेकिन इस बेल पर भी फल या फूल लगने के आसार अब तक दिखाई नहीं दिए, अब नैनतारा को डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिए, यदि छुट्टियों के दौरान ही हो जाए तो बेहतर रहेगा ।''

आज्ञाकारी पुत्र शाम को पत्नी को घर वापस ले आया । जब नैनतारा ने सुना कि डॉक्टरी जाँच के लिए अस्पताल जाना है तो बोल उठी-

''इस मामले में केवल स्त्री की जाँच तो एक आधी अधूरी प्रक्रिया है , जाँच तो दोनों की करवानी पड़ेगी । अत: आप को भी मेरे साथ चलना होगा ।''

यह सुन कर माँ बेटा दोनों दंग रह गए, माँ ने साफ़ मना कर दिया-

''यह भी कोई बात हुई भला, संतान की उत्पत्ति के लिए मर्द की जाँच ! न कहीं देखी न कभी सुनी अरे ! मर्द जात में कोई कमी नहीं होती, कमज़ोरी अथवा बाँझपन तो स्त्रीयों में होता है ।''

लेकिन नैनतारा ने भी ज़िद पकड़ ली थी । उसकी सास ने संध्या को साथ ले जाने का सुझाव दिया, फिर भी नहीं मानी तो अपनी सेवाएँ पेश कीं लेकिन बात नहीं बनी । घुआँधार बहस व तकरार के बाद झक मार कर पति को पत्नी के संग जाना पड़ा ।

चार दिन बाद रिपोर्ट लेने के लिए डॉक्टर ने दोनों को बुलाया था । घर पर माँ बड़ी बेचैनी से उनकी राह देख रही थी । लौट कर नैनतारा सीधे अपने कमरे के अंदर चली गई, पति गुम सुम सा बैठा रहा । दरअसल डॉक्टर द्वारा बताई गई कोई बात उसके पल्ले नहीं पड़ी थी । बेटे को इस प्रकार चुप चाप बैठा देख माँ पूछने लगी-

''अब मुँह लटका कर क्यों बैठा है ! असलियत छुपाने से क्या फ़ाएदा? बता भी दे, पत्नी का ऐब आख़िर कब तक छुपाएगा,''

अचानक नैनतारा अपने कमरे से बाहर निकल आई और हाथ नचाते हुए बोली-

''अगर आप में सुनने की हिम्मत है तो सुनिए, मैं बताती हूँ कि हक़ीक़त क्या है ! मेरी मेडिकल रिपोर्ट तो बिल्कुल नॉर्मल है लेकिन आप के बेटे की रिपोर्ट में दर्ज है कि इन्हें टेराटोस्पर्मिया (Teratospermia) की शिकायत है ।''

शाहिदा बेगम 'शाहीन'

जन्म :
19 नवम्बर, कर्नाटक, मैसूर ।
शिक्षा :
ऍम. ए ; ऍम.फ़िल (हिन्दी)
सम्प्रति :
1980 से एन. डी.आर.के. महाविद्यालय में हिन्दी प्राचार्य के पद पर सेवारत ।
प्रकाशित रचनाएँ :
भीगी पलकें (नौ कहानियों पर आधारित कहानी संग्रह)
कई कहानियाँ उर्दू और हिन्दी पत्र -पत्रिकाओं (सद्भावना दर्पण, दैनिक हिन्दी मिलाप, सालार, बज्में अदब, खनन भारती, ज़रीर्न शुआएँ, शायर आदि) में प्रकाशित हो चुकी हैं ।
विशेष :
अध्यक्ष :
विश्वविद्यालय हिन्दी परीक्षक मंडली,
सदस्य :
विश्वविद्यालय हिन्दी परीक्षक मंडली,
विश्वविद्यालय हिन्दी अध्ययन मंडली,
विश्वविद्यालय हिन्दी परीक्षक नियुक्ति मंडली
email:
shaheenndrk@yahoo.com

माँ बेटा दोनों आश्चर्य चकित रह गए, उनकी समझ में कुछ नहीं आया, तो नैनतारा ने कहा–

''कुछ पता भी है आपको कि इसका अर्थ क्या है..डॉक्टर के कहे अनुसार आपका बेटा किसी का पति तो बन सकता है लेकिन अपने अंदर बाप बनने की क्षमता नहीं रखता और यह बिमारी लाइलाज है ।

आश्चर्य से दोनों के मुँह खुले के खुले रह गए, अचानक माँ बोल उठी–

''सब बकवास है, मैं ने पहले ही कहा था कि इस के संग कहीं मत जाना, लेकिन तू ने मेरी बात नहीं मानी, अब देख ले.. कैसी बे तुकी बातें किए जा रही है जो आज तक किसी ने न सुनी होंगी! ख़ुद पति पर लांछन कर कितनी चालाकी के साथ अपना ऐब तेरे सिर मढ़ने की कोशिश कर रही है!''

नैनतारा ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि पति ने एक ज़ोरदार डाँट के साथ उसे चुप करा दिया और वह गुस्से में बड़बड़ाती हुई कमरे के अंदर चली गई ।

उसके बाद काफ़ी देर तक माँ बेटा मिलकर संपूर्ण वैद्यकों और चिकित्सा शास्त्र को बे बुनियाद और निरर्थक साबित करते रहे । फिर दिमागी रौ बहकी तो संध्या को कोसने देने लगे–

''यदि वह बाँझ न होती तो इस कुलक्षणी को भला क्यों घर लाते । ज़रा सा स्कूल में क्या पढ़ा दिया अपने आप को दुनिया भर की मास्टरनी समझने लगी है । समझ क्या रखा है? जो भी ऊटपटांग बकवास करेगी हम आँख बंद कर मान लेंगे! बेटा, मैं तो कहती हूँ सब से पहले इसे चुटिया से पकड़, लात मारकर घर से निकाल बाहर कर । दुनिया में लड़कियों की कमी है क्या? एक ढूँढो हज़ार मिलेंगी ।''

अचानक नैनतारा तुनकती हुई कमरे से बाहर निकल आई और चिल्ला कर बोली–

''तुम लोग मुझे क्या निकालोगे, मैं ख़ुद ऐसे आदमी के साथ नहीं रहना चाहती जो अपने ऐब पर परदा डालने के लिए पता नहीं और कितनी स्त्रियों की ज़िंदगी बरबाद करेगा, उन पर बाँझ का ठप्पा लगाएगा! मैं पूछती हूँ इस बेज़ुबान बेचारी संध्या पर और कितना अत्याचार करोगे? अपनी कमज़ोरी मान क्यों नहीं लेते आख़िर, बाँझ हम नहीं तुम हो!.... लेकिन फिर भी एक के बाद एक अनेक विवाह करते जाना अपना अधिकार मानते हो! और चाहते हो कि हम विरोध प्रकट किए बिना चुप चाप तमाशा देखती रहें ..क्यों? धिक्कार है तुम पर और तुम्हारी सोच पर!''

माँ बेटा दोनों भौंचक्के रह गए । नैनतारा ने अपना सामान बांध लिया था, उस ने घर से बाहर क़दम रख दिया और संध्या देखती रह गई..

मूसलाधार बरसात की संध्या में गूँज उठने वाला वह कारुणिक रुदन उसके कानों में प्रतिध्वनित हो रहा था तथा पत्थर की बड़ी- बड़ी सिलें कल्पना में उभर आई थीं, ऊपर आकाश की ओर देख वह भी रो पड़ी किंतु आर्तनाद गले से बाहर निकल नहीं पाया ।

व्यंग्य

साहित्य के झोला छाप डॉक्टर्स

डॉ. सुरेश अवस्थी (भारत)

प्रस्तावना : साहित्य का झोले के साथ प्राचीनकाल से घनिष्ठ रिश्ता रहा है। भाषा के प्रचलित व पुराने प्रतीकों से बात करें तो इसे 'साहित्य व झोले में चोली दामन का साथ' कहा जा सकता है। अधुनातन प्रतीकों से कहें तो इसे 'साहित्य व झोले का राजनीति व भ्रष्टाचार जैसा साथ' कहा जा सकता है। झोला व साहित्य के साथ डॉक्टर शब्द जोड़ें तो किसी बीमारी के होने का आभास होता है। बीमारी साहित्य की है या झोले की? यह तो स्पष्ट हो ही जायेगा परंतु यहां तो तथाकथित साहित्यकारों की बात करनी है जो साहित्य व उसके आधार पर हथियाई गयी डाक्टरेट की डिग्री झोले में डाल कर इधर उधर विचरते हैं और दूसरों पर रौब जमाने की कोशिश करते रहते हैं। ऐसे छद्मजीवी, परजीवी व स्वयंभू साहित्यकारों को ही साहित्य की नवीन विधा में साहित्य का झोला छाप डॉक्टर कहा जाता है।

संक्षिप्त परिचय:

साहित्य के झोला छाप डॉक्टरों की पहचान जानवरों के जुगाली करने की तरह काफी सरल और प्रत्यक्षदर्शी है। ऐसे लोग जिन्हें साहित्यकार होने की रतौंधी हो अथवा वे जिनके पूर्वजों में कोई छोटा, बड़ा, मझोला, असली, नकली, कथित या तथाकथित साहित्यकार रहा हो, वह यदि मान सम्मान के लिए कहीं से कथित विद्या वाचस्पति जैसी फालतू किंतु पालतू डिग्री खरीद लाये अथवा बिना खरीदे ही उनके होने का भ्रम पाल ले और उसी के दम-खम पर अपने नाम के आगे डॉक्टर (शार्ट में डॉ.) लिखना शुरू कर दे, उसे साहित्य का झोला छाप डॉक्टर कहा जा सकता है। यदि आप के पास ऐसे गिरगिटीय करेक्टर हैं तो आप उन्हें इस रूप में पहचान सकते हैं। इस कुल-वंश के लोगों की एक पहचान यह भी है कि यदि उन्हें डॉक्टर साहेब न कहो तो बुरा मान जाते हैं। यदि उनसे धोखे से भी उनका पीएचडी का विषय अथवा शीर्षक पूछ बैठें तो वे बगलें झाँकने लगते हैं। वैसे किसी को पता नहीं कि शरीर में बाँछें कहाँ होती हैं परंतु ऐसे लोगों को माननीय डॉक्टर साहब कह कर संबोधित कर दें तो उनकी बाँछें खिल उठती हैं। किसी में इनमें से एक भी लक्षण दिखे तो आप पक्का कर लीजिए कि वह साहित्य का झोला छाप डॉक्टर ही होगा।

जातियाँ एवं प्रजातियाँ:

वैसे प्रत्यक्ष रूप से तो साहित्य के झोला छाप डॉक्टरों की जाति, धर्म व ईमान गरीबी रेखा से काफी नीचे की एक ही सतह पर खड़े होते हैं। उनकी भौतिक आस्थाएँ उठान पर तथा नैतिक निष्ठाएँ ढलान पर होती हैं फिर भी यदि उनकी विशिष्ट योग्यताओं के आधार पर उनका क्लासीफिकेशन किया जाये तो मुख्य रूप से तीन तरह के लोग मिलते हैं।

(क) : मेंटल : साहित्य के वे झोला छाप डॉक्टर मेंटल श्रेणी में आते हैं जो पहले दसवीं कक्षा के दो या दो से अधिक बार व फिर 12 वीं कक्षा में तीन या तीन से अधिक बार मॉनीटर रह चुके होते हैं और बाद में पढ़ाई छोड़ कर धर्म, अध्यात्म, भाषा, कला, साहित्य अथवा परोक्ष में सामाजिक परंतु अपरोक्ष में असामाजिक धंधा शुरू कर देते हैं। फिर एक दिन भगवान बुद्ध की तरह उन्हें इसका अचानक बोध होता है कि वे साहित्य की विविध विधाओं में रचनाकर्म कर सकते हैं। बस उसी दिन उनके झोला छाप साहित्यकार होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। और एक दिन ऐसा आता है जब उन्हें लगने लगता है कि उन्हें थोड़ा पढ़ा लिखा भी दिखना चाहिए इसीलिए वे मर्जी से फर्जी डिग्री का कागज खरीद लेते हैं जिसके चलते उनकी मृतप्राय आत्मा अचानक जाग्रतावस्था में आ कर नाम के आगे डॉक्टर लिखने में गर्व का अनुभव करने लगती।

(ख) आर्नामेंटल : ऐसे कथित लिखखाड़ जिन्हें

दूसरों की नकल करने में शर्म महसूस नहीं होती। जो खुद की लिखी चिट्ठियों, घरेलू हिसाब, माफीनामा, शादी - व्याह के निमंत्रण पत्रों, ऊल जलूल तुकबंदियों तथा अखबारों को संपादक के नाम भेजे पत्रों को साहित्य की श्रेणी में रख कर खुद के साहित्यकार होने का भ्रम को 'हमरे हरि हारिल की लकड़ी' बना लेते हैं और फिर एक दिन अचानक उनको लगता है कि नाम के आगे डॉक्टर लिखा हो तो क्या कहने? बस वे कोई जुगाड़ करके कहीं, रद्दी किताबों की दुकान अथवा किसी दुछत्ती में खुले फर्जी डिग्री केंद्र से बिना विद्या प्राप्त किये वाचस्पति खरीद लाते हैं। ऐसे लोग डॉक्टर शब्द को मंगलसूत्र की तरह गले में लटका कर घूमते हैं। इसीलिए ऐसे लोग आर्नामेंटल कोटि के साहित्य के झोलाछाप डॉक्टर कहलाते हैं।

(ग) फंडामेंटल : साहित्य के झोलाछाप डॉक्टरों की तीसरी श्रेणी फंडामेंटल होती है। ये थोड़ा-थोड़ा गंभीर, थोड़ा पढ़े लिखे तथा थोड़ा थोड़ा सँभाल कर अभिव्यक्ति देने वाले होते हैं। ऐसे लोग स्नातक स्तर तक शिक्षित भी हो सकते हैं। उनकी रचनाएँ कहीं और न भी सही पर उनके मुफ्तखोर मित्रों, रिश्तेदारों (जिस खानदान में कोई साहित्यकार न हुआ हो) व फालतू की महफिलों में सराही जाती हैं। सराहना पाकर ऐसे व्यक्ति को एक दिन अचानक बोध होता है कि उसके पास कथित साहित्य का 'पाजामा' तो है पर उसे सम्मानित ढंग से बाँधे रहने का 'नाड़ा' नहीं है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि पाजामा चाहे चोरी का, फटा हो अथवा पुरातात्विक हो परंतु नाड़ा रेशमी, चमकदार, मजबूत व आकर्षक होना चाहिए। बस इसी नाड़े की भूमिका के लिए ऐसे लोग किसी दूसरे प्रदेश की गली छाप संस्था से कोई कागज खरीद लेते हैं और फिर नाम के आगे डॉक्टर लिखना शुरू कर देते हैं। पहले वे घर वालों से फिर दोस्तों से खुद को डॉक्टर साहब कहलाना शुरू करते हैं फिर धीरे धीरे उन्हें पुख्ता विश्वास हो जाता है कि वे वाकई डॉक्टरेट हैं।

सामाजिक लाभ : साहित्य के झोलाछाप ऐसे डॉक्टरों से समाज का कोई लाभ हो न हो परंतु उनको व्यक्तिगत लाभ जरूर होता है। मसलन उनकी बोलती खुल जाती है। भले ही आयातित हो पर स्वजनित आत्मसंतुष्टि भर का सम्मान मिलने लगता। उदाहरण के लिए एक साहित्यिक संगोष्ठी के पूर्व मित्र साहित्यकारों से बाते कर ही रहा था कि एक तुक्कड़बाज कवि श्री का प्रवेश हुआ। एक मित्र ने संबोधित किया, आइए डॉक्टर साहब। मुझे झटका लगा कि इन साहब ने कब पीएचडी पूरी कर ली? ये तो परास्नातक भी नहीं हैं और जहाँ तक मुझे जानकारी है कि परास्नातक अर्हता के बिना पीएचडी नहीं होती। संबोधित डॉक्टर साहब के चेहरे पर खुशी का सूरज उग आया। पीएचडी के बाबत पूछा तो बोले, पीएचडी नहीं विद्या वाचस्पति की उपाधि मिली है। मैं सोच रहा था कि कटोरा संस्कृति के इन महाशय को उपाधि? पूछा तो बोले, बस वैसे ही जैसे अमर्त्य सेन व एपीजी अब्दुल कलाम को कई विश्वविद्यालयों ने प्रदान की हैं। निहितार्थ निकला कि वे तो डिग्री के मामले में कलाम साहब हो गये। मुझे थोड़ी देर के लिए जैसे सुनाई देना बंद हो गया। लगा कि पूरे पाँच साल गली गली की खाक छान कर, 550 पृष्ठ काले करने तथा गुरुतर परीक्षा से गुजरने के बाद प्राप्त की पीएचडी की डिग्री उनके सामने बौनी लगने लगी थी।

सामाजिक हानि : साहित्य को झोला छाप डॉक्टरों के होने से साहित्य का खाता तो खाली होता ही है, सामाजिक संदेश भी ऊँटपटाँग जाता है। उक्त मित्र के साहित्य का डॉक्टर होने के बाद उनके एक प्रतिद्वंद्वी ने कमाल ही कर दिया। एक दिन उन्होंने साहित्यकारों की एक संगोष्ठी बुलाई। चाय पान के दौरान वे अपनी पाँचवी कक्षा फेल नौकरानी, आठवीं फेल नौकर व दसवीं फेल ड्राइवर को भी डॉक्टर साहब कह कर संबोधित कर रहे थे। कुछ अजीब सा लगा तो पूछ दिया ये सब डॉक्टर साहब? ठहाका लगा कर बोले, मैने इन सबको को उसी दुकान से डिग्री खरीदी है जिस दुकान से उस दिन मिले कवि मित्र खरीद कर लाये हैं। मैं अपनी हँसी न रोक सका।

उपसंहार :

किसी भाषा के साहित्य के झोले बढ़ें तो उसका साहित्य पुष्ट होता है परंतु जब उसमें झोला छाप डॉक्टर बढ़ते हैं तो क्या होता है? इस प्रश्न का जवाब तो आप सब स्वयं खोज लेंगे परंतु फिलहाल तो हम सभी को मिल कर साहित्य के झोलाछाप डॉक्टरों की सूची तैयार करके उनका उनकी डिग्री के लिए नहीं बल्कि उनके (दु:) साहस के लिए उनका नागरिक अभिनंदन करने की तैयारी करनी चाहिए।

●

drsureshawasthi@gmail.com

Shil K. Sanwalka, Q.C.
Barrister, Solicitor & Notary
18 WYNFORD DRIVE,
SUITE #602,
DON MILLS, ONT. M3C 3S2
Telephone: (416) 449-7755
Fax: (416) 449-6969
sksanwalka@rogers.com

संस्मरण

जाओ, घंटाघर तक घूमकर आओ

अखिलेश शुक्ल
(भारत)

आठवें दशक तक परसाई जी व्यंग्य को हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित कर चुके थे। उस समय तक उनके दर्जनों व्यंग्य संग्रह हिंदी साहित्यप्रेमियों के मध्य लोकप्रियता के चरम पर थे। 'रानी नागफनी की कहानी', सदाचार का ताबीज, 'जैसे उनके दिन फिरे' जैसी रचनाओं का हिंदी पाठक दीवाना सा था। 'वसुधा' के संपादन के पश्चात 'कल्पना' व अन्य पत्र पत्रिकाओं में उनके कालम पाठकों को प्रभावित कर चुके थे। उन्होंने समकालीन आलोचकों को व्यंग्य विधा पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता महसूस करा दी थी। व्यंग्य त्रयी के प्रमुख आधार स्व. श्री हरिशंकर परसाई अपने साथी व्यंग्यकारों श्री शरद जोशी, श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी के साथ विश्व साहित्य में व्यंग्य पताका लेकर सबसे आगे थे।

आज तक परसाई जी पर ढेरों संस्मरण व आलेख लिखे जा चुके हैं। उनके निकट रहे साहित्यकारों ने अपने अपने ढंग से उनकी जीवन शैली व रचनाधर्मिता पर प्रकाश डाला है। जबलपुर में उनकी मित्रमंडली में साहित्य के साथ साथ समाज के विभिन्न वर्ग के लोग भी शामिल थे। परसाई जी से उन लोगों के संबंधों पर अभी तक कुछ नहीं लिखा गया है। उनके अपने सजातीय बंधुओं से संबंध व व्यवहार पर भी अभी तक किसी ने विचार नहीं किया है। इसलिए परसाई जी के सामाजिक व सजातीय लोगों से संबंध के बारे में लोग अभी भी अधिक नहीं जानते। उनका व्यक्तित्व एक गंभीर व सजग पाठक का था। उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि वे लेखक साहित्यकार होने से पहले एक सजग पाठक हैं। एक ऐसा पाठक जो किसी रचना से पूरी तरह सामंजस्य स्थापित कर उसे आत्मसात करने का प्रयास करता रहता है।

उनका जन्म मेरे गृह नगर इटारसी मध्यप्रदेश के पास ग्राम जमानी में हुआ था। वे मेरे सजातीय थे तथा रिश्तेदार भी। अत: उनके लेखन से इस वजह से भी लगाव होना स्वाभाविक था। परसाई जी जबलपुर में रहते थे। बहन व बच्चों की जबावदारी भी उन्हीं पर थी। परिवार की आय का एकमात्र स्त्रोत लेखन था। परसाई जी के लेखन से जो भी मिलता था वे उसे बहन को सौंपकर घर के दायित्वों का निर्वाहन किसी तरह कर पाते थे। उनकी अधिकांश सामाजिक रिश्तेदारी इटारसी, होशंगाबाद और पास ही के ग्राम शाहगंज में थे। वे सामाजिक कार्यक्रमों में प्राय: कम ही शामिल होते थे। लेकिन सजातीय लोगों के आग्रह को कभी भी उन्होंने टाला नहीं था।

मेरे पिताजी स्वर्गीय श्री उमाशंकर शुक्ल, परसाई जी के अच्छे मित्रों में से थे। पिताजी हिंदी संस्कृत के विद्वान थे। उनके शिष्यों में समकालीन भारतीय साहित्य के पूर्व संपादक श्री गिरधर राठी, ख्यात कवि ओम भारती, पुनश्च के संपादक श्री दिनेश द्विवेदी, मशहूर समीक्षक व लेखक डॉ. कश्मीर उप्पल, कवि श्रीराम निवारिया जैसे आज के नामी गिरामी कई विद्वान शामिल थे। उन्होंने लेखन तो कम किया था लेकिन साहित्य जगत के लिए साहित्यकार व सजग पाठक गढ़ने का कार्य अधिक किया था। जिसे पूरा करने में वे अंत तक लगे रहे। ग्राम जमानी में ही जन्में ख्यात कवि स्व. श्री विनय दुबे व पिताजी कई सामाजिक कार्यक्रमों में साथ होते थे। जब भी ये तीनों मिलते थे साहित्यिक व सामाजिक बातचीत हुआ करती थी। जब इनमें से कोई दो मिलते थे तब इस त्रयी के अन्य व्यक्तित्व का पारिवरिक हालचाल व समाचारों का आदान प्रदान भी हुआ करता था।

पिताजी स्थानीय फ्रेंड्स उ. मा. शाला में हिंदी के शिक्षक थे। उनके प्राचार्य श्री परमहंस व वे मिलकर वर्ष में दो तीन साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया करते थे। इन कार्यक्रमों में देश भर के विद्वानों को अपने वक्तव्य के लिए आमंत्रित किया जाता था। यह एक मिशनरी शाला थी इसलिए विदेशी विद्वानों का आगमन भी समय समय पर होता रहता था। इसका लाभ संस्था के विद्यार्थियों को तो मिलता ही था साथ ही नगर का साहित्य व कलाजगत से भी विभिन्न विद्वानों से परिचित होता रहता था।

इसी सिलसिले में सन् 1977 में परसाई जी को एक बार विद्यालय में आमंत्रित किया गया था। मेरे पिताजी उस कार्यक्रम के संयोजक थे तथा संस्था के प्राचार्य परमहंस जी संरक्षक। मैं शायद उस समय कक्षा 11वीं का विद्यार्थी रहा होऊँगा। तब तक साहित्य की उतनी समझ तो नही थी पर पारिवारिक वातावरण की वजह से कुछ कविताएं लिख लिया करता था। उन कविताओं का स्थानीय व शालेय पत्रिकाओं में प्रकाशन भी हुआ था। लेकिन मैं उसे पर्याप्त नहीं मानता था। अत: कुछ और लिखने करने की लालसा मन में थी। परसाई जी का आगमन मेरे लिए एक सुअवसर की तरह था जिसे मैं पूरी तरह भुना लेना चाहता था। उनके व्यक्तित्व व प्रसिद्धि को देखते हुए फ्रेंड्स स्कूल के शांति भवन में कार्यक्रम रखा गया था। वे उस दिन समय के काफी पहले आकर प्राचार्य कक्ष में बैठ गए थे। उस रोज संस्था के प्राचार्य ने मुझे उनसे मिलवाया था। मैं तब तक उनकी बहुत सी व्यंग्य रचनाएँ पढ़ चुका था। उनकी रचनाएँ पढ़कर समझता था कि जैसा वे लिखते हैं ठीक वैसे ही होंगे। हँसोड़ व मजाकिया किस्म के इंसान। लेकिन व्यक्तिगत रूप से मिलने पर वे मुझे अपनी धारणा के विपरीत लगे। मैं अपने विद्यालय के वरिष्ठ सदस्य का पुत्र था तथा प्राचार्य का प्रिय शिष्य भी। इसलिए मुझे उनसे मिलने का पर्याप्त समय मिला। मेरी उस समय लेखन में रुचि तो थी ही लेकिन किसी लेखक अथवा साहित्यकार से मिलने का वह पहला अवसर था। इसलिए मुझे ज्ञात ही नहीं था कि विद्वानों से किस तरह से व किस तरह की बातें की जाना चाहिए। उनसे मिलने के पीछे व्यंग्य लेखन की दीक्षा लेने का विचार भी मन में था। इसलिए यह अवसर में गंवाना नहीं चाहता था। उन्होंने पिताजी व प्राचार्य के सामने मेरा परिचय प्राप्त करने के बाद बैठने का आग्रह किया जिसका पालन करना मेरा कर्तव्य था। अत: प्राचार्य की अनुमति से मैं भी उनके सम्मुख बैठ गया था। उन्होंने मुझसे कहा,

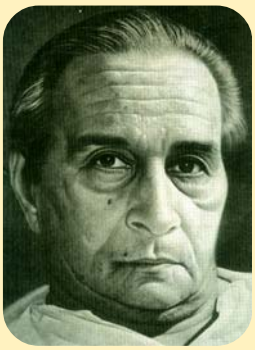

''अखिलेश तुम एक काम करो?'' यह सुनकर मैं प्रश्नवाचक मुद्रा में उनका मुँह ताक रहा था। वे अपनी बात जारी रखे हुए थे। वे कह रहे थे, ''तुम ऐसा करना कि बड़े होकर किसी अच्छी सी लड़की को लेकर भाग जाना।'' मुझसे कुछ कहते नहीं बना और न ही कोई जबाव सूझ रहा था। मैं पिताजी व प्राचार्य के सामने शर्म से पानी- पानी हुआ जा रहा था। उन बातों पर पिताजी व परमहंस सर मंद मंद मुस्करा रहे थे। परसाई जी उस वक्त भी गंभीर थे। उन्होंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, ''इससे दो फायदे होंगे, पहला तुम्हारे पिताजी को लड़की ढूँढने के लिए इधर- उधर नहीं भटकना पड़ेगा। दूसरा तुम्हें दहेज नहीं मिलेगा। ससुराल वालों और पत्नी से कोई डर नहीं रहेगा व तुम स्वाभिमान से जी सकोगे। इस आदेश का पालन तुम अपने मित्रों से भी कराना।'' मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। यह मेरा उपहास था कि भविष्य बनाने के लिए समझाइश। शायद वे समाज के लिए मुझे कुछ सीख दे रहे थे, या यह समझा रहे थे कि दहेज विहीन विवाह अब समय की माँग है।

उस रोज़ उन्होंने मुझे गद्य लेखन के लिए प्रेरित भी किया था। कहा था, ''गद्य लिखना चाहते हो तो शुरू करो। यदि व्यंग्य लिखना हो तो अपने आसपास का अवलोकन करो व गहन अध्ययन करो, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।''

उन्होंने बाद में हॉल में जो वक्तव्य दिया उसमें भी छात्रों से लड़की को लेकर भाग जाने की बात व्यंग्यात्मक लहजे में कही थी। शायद वे समाज को अपने कर्तव्य व दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाहन करने का बोध कराना चाह रहे थे। परसाई जी से यह मेरी पहली मुलाकात थी जिसमें मैं उनका अनुयायी बन गया था। उनका कहीं भी कुछ भी प्रकाशित होता मैं अवश्य ही पढ़ता। उनकी बातें तथा व्यक्तित्व मेरे दिमाग में गहराई तक बैठ चुके थे। इसलिए बार बार मिलने की इच्छा होती थी।

उस पहली मुलाकात के लगभग चार पाँच वर्ष बाद मेरा जबलपुर जाना हुआ था। मैं एक वैवाहिक कार्यक्रम में शामिल होने के लिए गया था। लेकिन असली व महत्वपूर्ण कार्य परसाई जी से मिलना था। अत: उस कार्यक्रम में अपनी उपस्थिति मात्र देकर उनके घर चला गया था। वह शरद ऋतु थी, दिसम्बर का अंतिम सप्ताह। जबलपुर वैसे भी दिसम्बर में ठंड से ठिठुरता रहता है। लेकिन उनसे मिलने की उत्कट इच्छा थी। इसलिए उनका घर खोजता हुआ किसी तरह रात्रि के 9 बजे पहुँचा था। सामान्यत: वे रात्रि में किसी से बहुत ही कम मिलते थे। लेकिन मुझ पर उनकी विशेष कृपा थी क्योंकि मैं उनके प्रिय मित्र का पुत्र जो था। मेरे आने का कारण पूछने के पश्चात उन्होंने मुझ जैसे 21-22 वर्ष के लड़के पर जो अपार स्नेह जताया था उस पर मैं फिदा हो रहा था। मैंने ज्यादा भूमिका न बनाते हुए अपने लिखे हुए दो-तीन व्यंग्य उनके सामने रख दिए। मैं अब कभी कभी सोचता हूं कि मैं भी कितना मूर्ख था जो एक विश्व स्तरीय लेखक के सामने अपने आप को क्या समझ कर प्रस्तुत कर रहा था? उन्होंने मेरे लिखे पर सरसरी तौर पर नज़र डालने के पश्चात कहा, ''अखिलेश तुम पैदल घंटाघर तक जाओ, भले ही समय लग जाए। जब तक लौटकर आओगे मैं भोजन कर लूँगा फिर तुमसे बातें करूँगा।'' मैं आश्चर्यचकित था, साथ ही दुखित भी। इतनी रात गए आखिर क्यों वे मुझे घंटाघर तक भेज रहे हैं? कड़कड़ाती ठंड में आखिर उन्हें यह क्या सूझा? यदि कुछ कहना ही था तो कह लेते। लेकिन उनका आदेश था, इसलिए मानना ही था। मैं न चाहते हुए भी मन मसोसकर घंटाघर तक गया। उस रोज जबलपुर में सड़क पर इक्का दुक्के इंसान ही नज़र आ रहे थे। घंटाघर से पहले सड़क पर जरूर कुछ जानवर झुण्ड में बैठे जुगाली कर रहे थे। प्राय: सभी दुकाने बंद हो चुकी थीं। घंटाघर पर केवल एक चाय का टप खुला हुआ था जिस पर दो तीन लोग अंगीठी के पास बैठे हाथ सेंकते हुए चाय पी रहे थे।

खैर, किसी तरह ठंड में काँपते हुए मैं घंटाघर तक जाकर लौटा था। उस रात्रि भूख के मारे पेट में बल पड़ रहे थे सो अलग। अत: केवल चाय पीकर अपने आराध्य से मिलने की लालसा लिए हुए जल्दी- जल्दी लौट पड़ा था। इतने सब में लगभग 40-45 मिनिट का समय तो लग ही गया था। वे भोजन करने के पश्चात दालान में बिस्तर दुरूस्त कर रहे थे। शायद दिन भर के थके होंगे, इसलिए जल्दी सोना चाह रहे थे। साथ ही उन्हें मेरे लौटने की प्रतीक्षा भी थी। जिसकी वजह से वे कभी-कभी बाहर भी झाँक लेते थे। मेरे लौटने पर उन्होंने मुझे दालान में पड़ी एक कुर्सी पर बैठाया था। बिना किसी औपचारिकता के उन्होंने मुझसे प्रश्न किया, ''घंटाघर तक जाने व लौटकर आने में तुमने क्या देखा? तुम्हें कैसा अनुभव हुआ?'' मैंने अपनी दास्तान सविस्तार उन्हें सुना दी। मेरी बातें सुनने के पश्चात उन्होंने कहा, ''क्या तुम इस पर व्यंग्य लिख सकते हो? जो रास्ते में तुमने देखा व महसूस किया क्या उस पर कुछ कह सकते हो?'' मैं परेशान था, नींद आने लगी थी। अब व्यंग्य के स्थान पर पेट में कुछ डालने की आवश्यकता महसूस हो रही थी। मैं यह भी सोच रहा था कि उस वैवाहिक समारोह में मेरे ना होने पर मुझे ढूँढा जा रहा होगा। मेरी विवशता की परवाह किए बिना वे कह रहे थे, ''घंटाघर तक जाकर आने के घटनाक्रम को व्यंग्य के रूप में लिख सकते हो तो लेखन जारी रखो अन्यथा?'' मैंने प्रश्न किया, ''अन्यथा क्या?'' वे बोले, ''तुम्हारा यह लेखन एक थाल में सजाकर, उस पर हल्दी अक्षत छिटक कर, भेड़ाघाट पर नर्मदा में विसर्जित कर आओ।''

मैं उनकी स्पष्टवादिता व मंशा अच्छी तरह समझ चुका था। अत: विदा लेकर वापस चला आया था। यह मेरी उनसे दो छोटी सी मुलाकातें थीं। जिसमें मैं उनके दृष्टिकोण व विचारों से कुछ हद तक परिचित होकर संतुष्ट हुआ था। यह दीगर बात है कि कुछ पारिवारिक व अन्य कारणों से लगभग 10-12 वर्ष तक लेखन से दूर रहा था।

आज भले ही साहित्य जगत में मैं अधिक नही जाना पहचाना जाता हूं। भले ही मैं एक व्यंग्यकार अथवा कथाकार के रूप में स्थापित नहीं हो सका हूँ। लेकिन परसाई जी से उन दो मुलाकातों ने मुझे गहन अध्ययन व पैनी दृष्टि से साहित्य एवं समाज को देखने समझने को जो मंत्र दिया आज भी वह मेरे काम आ रहा है। आज भी उनका वह कथन, ''जाओ, घंटाघर तक घूमकर आओ'' मेरे कानों में गूँजकर प्रेरित करता रहता है।

akhilsu12@gmail.com

Beacon Signs
1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 **Fax: (905) 678-1271**

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

तंग कोठरी

नीरज नैथानी (भारत)

ज़िन्दगी भर किराए के मकान में किसी तरह गुज़र बसर की। किराए के मकान क्या तंगहाल कोठरियाँ कह लीजिए, चाहे दड़बा कह लीजिए। कमरों की नुक्ताचीनी करते समय बीत गया।

अब मेरे उन मित्र के अपने मकान का निर्माण कार्य चल रहा था। एक दिन संयोग से मित्र के साथ उसके निर्माणाधीन मकान को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। उसने एक बड़े आकार के कक्ष में प्रवेश करते हुए गर्व से बताया कि यह ड्राइंगरूम है, उसके साथ लगा हुआ लगभग उसी आकार का दूसरा बड़ा कमरा बेडरूम।उसके बाहर गैलरी व चौड़ी लॉबी के साथ डाइनिंगरूम। सामने पूजा -कक्ष बगल में किचन तथा दूसरी ओर छत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ। सीढ़ियों की बगल में गेस्टरूम।

मैंने देखा गेस्टरूम के साथ सटी एक छोटी सी अन्धेरी कोठरी व उससे जुड़ी एक और तंग कोठरी। मैंने मित्र से पूछा "ये...शायद स्टोर रूम.....?" दोस्त ने बताया "नहीं, यह तो एक कमरा व किचन सैट है। यह अपने उपयोग के लिए नहीं, वरन किराए पर देने के लिए बनाया है।"

●

h_heato@yahoo.co.in

आग

सुधा भार्गव (भारत)

छह कमरों वाला दो मंजिला मकान मेरे प्रोफेसर पापा ने बड़े शौक से बनवाया। वह और उसकी छोटी बहन उसी में रहकर बड़े हुए। प्रोफेसर पापा ने ऊपर का हिस्सा बहन के नाम कर दिया। बेटा तो महलनुमा बंगले का वारिस केवल स्वयं को समझता था। उनके इस कदम ने उसके और उसकी पत्नी के अन्दर आग पैदा कर दी। चारों तरफ़ वह आग फैलने लगी।

एक-दूसरे पर कड़वे बोलों के चाबुक पड़ने लगे सटासट-सटासट। नफ़रत ने पैर पसार लिये। कोमल भावनाएँ दफ़्न हो गईं। प्यार भरे शब्द पंख फैलाकर उड़ गए। चुप्पी की दीवारें आकाश छूने लगीं। सब कुछ जानते हुए भी अनजान बनना सीख लिया।

माँ बीमार हुई.. पता नहीं.. उसका आपरेशन हुआ.... पता ही नहीं। वह मरणासन्न है-कुछ भी

पता नहीं। जब कपाल क्रिया का समय आया, वह अवसाद की गहरी खाई में जा गिरा।

सोचने-समझने की शक्ति जबाव दे गई थी तभी सुना, कोई कह रहा था.... 'आग दो-आग दो।'

'आग ? कहाँ है आग !' वह घबराया 'जल्दी बुझाओ, नहीं तो आग और फैल जाएगी।' उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया। वह ज़ार-ज़ार रो रहा था।

●

जे 703, स्प्रिंग फ़ील्ड, 17 / 20, अम्बालीपुरा विलेज बेलन्दुर गेट सरजापुरा रोड, बेंगलुरू 560102

भाग्य

रामकुमार आत्रेय (भारत)

बूढ़ा आदमी जब भी बाहर निकलता अपने भाग्य को कोसता हुआ निकलता। दुर्भाग्यवश कुछ दिन पहले ऑपरेशन के दौरान उसकी आँखों की रोशनी जाती रही थी। सिर्फ एक आँख से वह धूप-छाँव ही देख रहा था। अक्सर ठोकर खाकर गिर जाता। आज भी वह इसी तरह अपने भाग्य को गालियाँ देते हुए आगे बढ़ रहा था कि अचानक कोई आदमी उससे आ टकराया। वह गिरते-गिरते बचा। उसका बदन गुस्से से तिलमिला उठा। वह चिल्लाया, "देखकर नहीं चलते.....भगवान ने मुझे तो अंधा कर दिया....तू भी अंधा है क्या, बेशर्म!"

उसके मन में आया कि स्वयं से टकराने वाले व्यक्ति की गर्दन दबा दे। ऐसा करने के लिए उसके हाथ एक बार ऊपर को उठे पर तभी सामने वाले व्यक्ति की गिड़गिड़ाती हुई आवाज सुनाई दी, "माफ करना बाबा, मैं तो सचमुच में ही अंधा हूँ....मुझे कुछ नहीं दिखाई देता.....अपना बच्चा समझकर मुझे माफ़ कर दो।"

"क्या उम्र है तुम्हारी?"

"यही कोई बारह-तेरह वर्ष होगी, बाबा।" सामने वाले का बाल-सुलभ स्वर सुनाई पड़ा।

"कैसे और कब से जाती रही तुम्हारी आँखों की रोशनी?"

"मैं तो जन्म से अंधा हूँ बाबा।" उसके मुँह से कँपकँपाता हुआ स्वर निकला। मानो वह मन ही मन रो रहा था।

इस घटना के पश्चात् बूढ़े ने अपने भाग्य को कोसना बंद कर दिया।

●

864-ए /12 आज़ाद नगर, कुरुक्षेत्र -136119, हरियाणा

कविताएँ

ख़्वाबों सी लड़की

रश्मि प्रभा (भारत)

ख़्वाबों सी लड़की अक्सर मर जाती है
सच या झूठ –
ये तो वह भी नहीं जानती !
जानेगी कैसे
रूह बन कर चलना
उसका ख्वाब जो होता है ...
रूह बनी लड़की रूहों से प्यार करती है
ख़्वाबों की सरज़मीं पर
रूहानी घर बनाती है
हवाएँ आध्यात्मिक चलती हैं
प्यार समर्पण के गीत गाता है
कोई आए न आए दरवाज़े खुले होते हैं
.... ख्वाब सी लड़की
सांकलों को भय मानती है
भयमुक्त ख्वाब में वह सांकलें नहीं लगाती
सूक्ष्म से सूक्ष्म ख्याल
गौरैया से मासूम होते हैं
ख़्वाबों की हथेली पर बेफिक्र दाने चुगते हैं ...
बहेलिया सा मन होना तो आम बात है
पर मन को रूह की उँगली थमा
प्राकृतिक सृजन करना कठिन है ...
ख़्वाबों के परिधान बमुश्किल बनते हैं
और एक लड़की मुश्किलों में ही राह बनाती है
ख़्वाबों सा प्यार ख़्वाबों के मंत्र
ख़्वाबों का ध्यान ... उसके हौसले होते हैं !
मरने का गिला नहीं होता
जीने के लिए वह ख्वाब बन जाती है
और न जी पानेवाले रास्तों में
उसे अपने मरने का आभास तक नहीं होता
ख़्वाबों सी लड़की
अंगारों में साँसें ले ही लेती है मरने से पहले ...

●

rasprabha@gmail.com

मैंने देखा

कादम्बरी मेहरा (यूके)

मैंने देखा प्रगतिशील भारत
और उसके चरणों में चढ़ते कूड़े के फूल !
मैंने देखीं अभूतपूर्व सड़कें
और उनके दोनों ओर कचरे की डीह !
मैंने देखे नवनिर्मित प्लेटफार्म
और उनको सींचता भारतीयों का विष्ठा –तर्पण !
मैंने देखे स्थापत्य के अद्भुत अभियान
और उन पर छपे तम्बाख़ू के शाप !
मैने देखीं स्वावलंबी नारियाँ
पर शादी के हाट में फिर भी पराधीन !
मैंने देखी आज की अन्दर वाली
बाहर वाली सी कटु, दिखावटी, श्रीहीन !
मैंने देखे बालाजी, वैष्णोदेवी, विश्वनाथ,
और भक्तों को मारते धकेलते देव सेवक !
मैंने देखा छिना हुआ अपना घर
और उस पर बना नया मेट्रो स्टेशन !
मैंने देखा खुद को देश और समाज से
फिर अपनी अस्मिता से होते पराई !
मैंने देखा न गंगा तट, न दो गज ज़मीन
एक लकड़ी के बक्से में खुद की विदाई !

●

kadamehra@googlemail.com

मन कबीरा

शशि पाधा (अमेरिका)

मन मोरा आज कबीरा सा !
अपनी धुन में गाता फिरता
ढपली और मंजीरा सा
छूटा जग का ताना –बाना
अपना ही घर लगे बेगाना
गली–गली फकीरा सा ।
न जाए अब मथुरा काशी
न ढूँढे रत्नों की राशि
कंकर–कंकर हीरा सा
बाहर भीतर एक रूप मैं
कभी मैं साधु कभी भूप मैं
रंग–रंग अबीरा सा
दूर डगर अब चला अकेला
बाँध न पाए जग का मेला
सागर तीरे धीरा सा
मन मोरा आज कबीरा सा ।

●

वह हमारा प्यार है

नरेन्द्र कुमार सिन्हा (भारत)

व्योम में सर्वत्र जितना ज्योति का विस्तार है,
वह हमारा प्यार है ।

चूमता हूँ मैं धरा को प्रात की मुस्कान से,
भर रहा हूँ अरुण ऊष्मा रश्मि–पुलकित प्राण से,
प्यास मैं इसकी बुझाता सागरों का नीर ले,
उर्वरा बनती है धरती जो कि बारम्बार है,
वह हमारा प्यार है ।

अनगिनत तारे सजाता मैं निशा के बाल पर,
स्वर्ण का टीका लगाता चंद्रमा का भाल पर,
फूल से अभिषेक करता सब उसे मधुमास कहते,
तीव्र मेरी साँस में जो मलय का संचार है,
वह हमारा प्यार है ।

पर्वतों की श्रेणियाँ मेरी भुजा हैं, हाथ हैं,
रोम जैसे वृक्ष मेरे स्फुरण के साथ हैं,
सर, सरित, निर्झर, जलाशय, अंग पर, प्रत्यंग पर,
मैं बिखेरे जा रहा जो, मलय का श्रृंगार है,
वह हमारा प्यार है ।

माधुरी हूँ कोकिला में, चातकी में प्यास हूँ,
पीर हूँ पपीहरे में, मोर में उल्लास हूँ,
नारी का, नर का, परस्पर जो युगों से चल रहा,
नित्य, शाश्वत, औ' निरन्तर प्रेममय संसार है,
वह हमारा प्यार है ।

●

nksinha02@hotmail.com

शब्द सफ़ेद पाखी और पीली तितलियाँ

निर्मल गुप्त (भारत)

शब्दों के सफ़ेद पाखियों की कतारें
जाने कहाँ से चली आती हैं
मन के अरण्य में
जहाँ कोई आतुरता नहीं
किसी का इंतज़ार नहीं।
एकाकीपन के घनीभूत क्षणों में
ये सफ़ेद पाखी स्वत: तब्दील हो जाते हैं
पीली तितलियों में
जो पता नहीं किस गंध का अनुमान करती
तिरने लगती हैं वातावरण में।
शब्दों का यह इन्द्रजाल
केवल देखा जा सकता है
या अनुभव किया जा सकता है
बिना किसी अर्थवत्ता के
इन अराजक शब्दों को
कोई अर्थवान बनाए भी तो कैसे?
पाखियों को पकड़ पाने की कला
बहेलिए जानते तो हैं
लेकिन पाखियों को
परतंत्र बनाने की जुगत में
वे उन्हें मार ही डालते हैं वस्तुत:
कभी किसी ने परतंत्र पाखी को
उन्मुक्त स्वर में गाते देखा है भला?
अलबत्ता तितलियों को तो
नादान बच्चे भी पकड़ लिया करते हैं
पर तितलियाँ तो
तितलियाँ ही होती हैं अन्तत:।
उन्हें किसी ने स्पर्श भर किया
और उनके रंग हुए तिरोहित
पंख क्षत विक्षत।
एक बार पकड़ी गई तितली
फिर कभी उड़ पाई है क्या?
एक न एक दिन
शब्दों के ये सफ़ेद पाखी
अवश्य गाएँगे एक ऐसा गीत
जिससे आलोकित हो उठेगा
मन के अरण्य में बिखरा
घटाटोप अंधकार
अपनी सम्पूर्ण हरीतिमा के साथ।
शब्दों के पाखियों को
मन के बियाबान के अनंत में
यों ही उड़ान भरने दो
पीली तितलियों का यह खेल
बस देखते रहो
जब तक देख सकते हो
निशब्द निस्तब्ध.

●

gupt.nirmal@gmail.com

उलझन

शकुन्तला बहादुर (अमेरिका)

उलझनें उलझाती हैं,
मन को भटकाती हैं।
कभी इधर,कभी उधर,
मार्ग खोजने को तत्पर,
भँवर में फँसी नाव सा,
लहरों में उलझा सा,
बेचैन डगमगाता सा,
मन बहक बहक जाता है।
मंज़िल से दूर....
बहुत दूर चला जाता है॥
कभी लगता है कि रेशम के धागे
जब उलझ उलझ जाते हैं ,
चाहने पर भी सुलझ नहीं पाते हैं ,
टूट जाने से गाँठ पड़ जाती है,
जो हमें रास नहीं आती है
किन्तु... धैर्य से उन्हें सुलझाते हैं ,
तो सचमुच सुलझ जाते हैं॥
सोचती हूँ, उलझना तो
चंचल मन की एक प्रक्रिया है,
जो विचार-शक्ति को कुन्द करती है।
मन को चिन्तामग्न
और शिथिल करती है॥
इस पार या फिर उस पार
जिसका निर्णय सुदृढ़ है ,
जो स्थिर-बुद्धि से बढ़ता है,
उलझनों से वह बचता है,
वही सफल होता है
और मंज़िल पर पहुँचता है॥
जीवन अगर सचमुच जीना है,
तो उलझनों से क्या डरना है?
पथ के हैं जंजाल सभी ये,
रोक सकेंगे नहीं कभी ये॥
उलझन पानी का बुलबुला है,
चाहें उसे फूँक से उड़ा दो,
या फिर उसके चक्रव्यूह में-
अपना मन फँसा दो।
तभी तो ज्ञानी कहता है,
जिसने मन जीता,
वही जग जीता है॥

●

heyitsmekriti@gmail.com

निहारे नयन सुमन अविराम

श्यामल सुमन (भारत)

झील सी गहरी लख आँखों में, नील-सलिल अभिराम।
निहारे नयन सुमन अविराम॥
कुछ समझा कुछ समझ न पाया, बोल रही क्या आँखें?
जो न समझा कहो जुबाँ से, खुलेगी मन की पाँखें।
लिपट लता-सी प्राण-प्रिये तुम, भूल सभी परिणाम।
निहारे नयन सुमन अविराम॥
दर्द बहुत देता इक काँटा, जो चुभता है तन में।
उसे निकाले चुभ के दूजा, क्यों सुख देता मन में।
सुख कैसा और दु:ख है कैसा, नित चुनते आयाम।
निहारे नयन सुमन अविराम॥
भरी दुपहरी में शीतलता, सखा मिलन से चैन।
सिल जाते हैं होंठ यकायक और बोलते नैन।
कठिन रोकना प्रेम-पथिक को, प्रियतम हाथ लगाम।
निहारे नयन सुमन अविराम॥

●

http://manoramsuman.blogspot.com

ग़ज़लें

●डॉ. मो. आज़म (भारत) ●नवीन सी. चतुर्वेदी (भारत) ●कंचन चौहान (भारत)

झुकते बाँसों को ध्यान में रखना

हक़ परस्ती को ध्यान में रखना
सच ही अपने बयान में रखना

ज़िंदगी नाम है सफ़र का तो
ख़ुद को क्या सायबान में रखना

आसमानों को छू के आना है
ये इरादा उड़ान में रखना

तुम बुलंदी पे आज हो लेकिन
झुकते बाँसों को ध्यान में रखना

तुम भले टूट कर बिखर जाओ
एकता ख़ानदान में रखना

मैं तुम्हें छोड़ भी तो सकता हूँ
ये भी वह्मो गुमान में रखना

सर्द दुश्मन का जोश कर दे जो
लोच ऐसी ज़बान में रखना

◆◆◆

डॉ. मो. आज़म (भारत)
+91-9827531331

हवा के साथ पत्ता दूर तक जाता नहीं अक्सर

हम इस दिल को अगर जज़्बात का दफ़्तर बना लेते
मुनाफ़ा छोड़िये जी, खुद को भी पत्थर बना लेते

हवा के साथ पत्ता दूर तक जाता नहीं अक्सर
तो फिर वो हमको अपना हमसफ़र क्यूँ कर बना लेते

न यूँ मजबूर होते शह्र में घुट घुट के मरने को
जो अपने गाँव या क़स्बे में भी इक घर बना लेते

अगर ये फीस दे कर सीखने वाला हुनर होता
कई शहज़ादे अपने आप को शायर बना लेते

दिलों में फ़स्ल उगा लेते अगर रौशनख़याली की
तो मुस्तक़बिल वतन का और भी बेहतर बना लेते

◆◆◆

नवीन सी. चतुर्वेदी (भारत)
navincchaturvedi@gmail.com

वो शम्अ जिससे हमारी हयात रौशन है

नज़र से छिप के बुलाओ, ये कोई बात हुई
पता न घर का बताओ, ये कोई बात हुई

हवाले हमको हमारे ही करके छोड़ दो, फिर
पलट के लौट भी आओ, ये कोई बात हुई

वो शम्अ जिससे हमारी हयात रौशन है
हमें उसी से जलाओ ये कोई बात हुई

ख़ता बताओ हमारी, सज़ा सुनाओ हमें
ख़मोशियों से सताओ ये कोई बात हुई

तुम्हारे दम पे है साधा ये आसमां का सफ़र
तुम्हीं न साथ में आओ ये कोई बात हुई

ज़माने बीत गये आईनों की दाद मिले
नज़र न तुम भी उठाओ ये कोई बात हुई

निशान वस्ल के जैसे हैं ख़ूबसूरत हैं
इन्हें भी दाग़ बताओ, ये कोई बात हुई

◆◆◆

कंचन चौहान (भारत)
kanchan_chouhan2002@yahoo.com

कविताएँ

●रचना श्रीवास्तव (अमेरिका) ●डॉ. वंदना मुकेश (यूके) ●मंजु मिश्रा (अमेरिका)

क्षणिकाएँ

रचना श्रीवास्तव (अमेरिका)

१)
बच्ची की मुट्ठी में
माँ का आँचल देख
अपनी हथेली सदैव
खाली लगी ।

२)
माँ पर कविता लिखूँ कैसे
मेरे पास है
एक तस्वीर
जिसे माँ बताया गया
और कुछ फुसफुसाते शब्द
''बिन माई कै बिटिया'' ।

३)
ये दीवारें, ये आँगन
जानते हैं मुझे
पर ये मेरे नहीं है
बहुत से लोग है यहाँ
लेकिन रिश्तेदार नहीं
ये बड़ी इमारत
घर नहीं पर घर है
इस के ऊपर लिखा है
''अनाथाश्रम''।

४)
हमें पूर्वजों ने
हिन्दी की लहलहाती फसल दी
हमने न सींचा, न खाद डाली
ना ही खर पतवार निकाली
कुम्हलाती हुई वो बोली
यदि मुरझा गई मैं
तो क्या
अपने बच्चों को
सूखी नदी थमाओगे।

५)
सुनो हिंदी
हमने तुम्हें
राजकीय काम काज में रखा है,
विशेष अवसरों पर
करते हैं तुम्हारा उपयोग
तुमको संजोया है ग्रंथों में,
शब्दकोशों में ।
वो बिदक गई
बोली,
इन बाल खिलौने से
मुझे ना बहलाओ
मुझे बसा सको तो
ह्रदय में बसाओ
अपना मान बना कर ।

६)
अपने ही घर में
उपेक्षित वो
कभी आँगन में
दुबकी रहती,
कभी छज्जे पर दिखती,
वो विशेष अवसरों पर
ढूँढ़ कर लाई जाती।
एक रोज़
सड़क पर मिली
पूछ कौन हो...
कहा उसने 'तुम्हारी मातृ भाषा'।

●

rach_anvi@yahoo.com

डॉ. वंदना मुकेश (यूके)

१)
बहुरंगी जामा पहने शब्द
भटकते
अर्थ की तलाश में
निशब्द!

२)
मन ही तो है,
मिला लो तार उसके,
छेड़ दो सरगम कोई
कि गूँज उठेगी,
सुरीले मनों से
क़ायनात सारी।

३)
शाम के धुँधलके में
आकाश की छाती पर
लाल, नारंगी, नीली, हरी रेखाएँ
धरती की असह्य पीड़ा का प्रतिबिंब ।

४)
बादलों की आँखें,
धरती को पहले सा,
देख नहीं पाती।
धुँए की धुँध से नम,
मगर भिगो नहीं पाती।

●

vandanamsharma@yahoo.co.uk

मंजु मिश्रा (अमेरिका)

१)
दिए के साथ आँधियों का रिश्ता
जैसे सुख का दुःख से
एक के बिना दूसरा अधूरा

२)
नन्हा सा दिया
अँधेरे को चीरता है
फ़िर वो चाहें जितना
गहरा क्यों न हो..

३)
अंधेरों !
अपनी ताकत पे इतराना मत,
जलने तो दो एक भी दिया
फ़िर देखना
तुम्हारी विस्तार की ताकत
कैसे तुम्हारा साथ छोड़ती है
और उजालों से रिश्ता जोड़ती है

●

manjumishra@gmail.com

कविताएँ

माहिया

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' (भारत)
rdkamboj@gmail.com

१
आँसू जब बहते हैं
कितना दर्द भरा
सब कुछ वे कहते हैं।

२
ये भोर सुहानी है
चिड़ियाँ मन्त्र पढ़ें
सूरज सैलानी है ।

३
मन-आँगन सूना है
वो परदेस गए
मेरा दु:ख दूना है।

४
मिलने का जतन नहीं
बैठे चलने को
नयनों में सपन नहीं।

५
यह दर्द नहीं बँटता
सुख जब याद करें
दिल से न कभी हटता ।

माहिया

माहिया पंजाब के प्रेम गीतों का प्राण है । पहले इसके विषय प्रमुख रूप से प्रेम के दोनों पक्ष- संयोग और विप्रलम्भ रहे हैं । वर्तमान में इस गीत में सभी सामाजिक सरोकारों का समावेश होता है । तीन पंक्तियों के इस छन्द में पहली और तीसरी पंक्ति में 12 -12 मात्राएँ तथा दूसरी पंक्ति में 10 मात्राएँ होती हैं। पहली और तीसरी पंक्तियाँ तुकान्त होती है ।

६
नदिया यह कहती है-
दिल के कोने में
पीड़ा ही रहती है ।

७
यह बहुत मलाल रहा
बहरों से अपना
क्यों था सब हाल कहा।

८
दिल में तूफ़ान भरे
आँखों में दरिया
हम इनमें डूब मरे।

९
दीपक-सा जलना था
बाती प्रेम -पगी
कब हमको मिलना था।

१०
तूफ़ान-घिरी कलियाँ
दावानल लहका
झुलसी सारी गलियाँ।

SAI SEWA CANADA
(A Registered Canadian Charity)
Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545 Service to humanity

दृष्टिकोण

इन्हें 'प्रवासी' कैसे कहूँ ?

मधु अरोड़ा (भारत)

मेरे लिये 'प्रवासी साहित्य' शब्द हमेशा असमंजसभरी स्थिति पैदा कर देता है। यदि व्यापक तौर पर देखा जाये तो हम सभी प्रवासी हैं। फ़र्क़ बस एक ही है कि हमारे जो रचनाकार सात समुद्र पार चले गये, उन्हें विशेष रूप से 'प्रवासी' नाम दिया गया। ठीक है, यह एक सुविधा के तहत हुआ पर 'प्रवासी साहित्य' शब्द आज भी मेरे गले में हड्डी बनकर अटका है। मेरे हिसाब से लेखन तो लेखन है। विदेशों में हिन्दी में लिखे साहित्य को 'प्रवासी' शब्द क्यों? जब-जब हिन्दी साहित्य के तथाकथित प्रवासी साहित्य पर कुछ लिखने बैठी हूँ, ख़ुद को एक चक्रव्यूह में घिरा पाया है ।

तथाकथित प्रवासी रचनाकार सभी देशों में रचना कर्म कर रहे हैं । सोचा कि इंटरनेट पर अमेरिका में बसे अपने रचनाकारों के लेखन को पढ़ा जाये और कुछ लिखा जाये। अब वहाँ पूरा साहित्य तो उपलब्ध नहीं है, सो एक- एक कहानी खोजी । इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य के आधार पर पाया कि अमेरिका में तो लंबे समय से सशक्त रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग उपस्थित है और निरंतर रचनाकर्म में लगा हुआ है । अमेरिका के हिन्दी सहित्य का इतिहास शुरू होता है तीन नामों से । वे हैं- उषा प्रियंवदा, सुनीता जैन ओर सोमा वीरा । साठ के दशक में इन रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य को उल्लेखनीय रचनाएं दीं । इनकी रचनाएँ जीवन शैली की भिन्नता, सोच का वैभिन्न्य और भाषागत भिन्नता से एक किस्म का 'कल्चरल शॉक' देती रही। इस लेखिका त्रयी ने न केवल भारतीय साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि उसका परिचय ऐसे कथा लोक से कराया, जो इससे पहले हिन्दी साहित्य में अनजाना था। सत्तर के दशक में अमेरिका आये अन्य रचनाकार हैं- कमलादत्त, वेदप्रकाश बटुक और इन्दुकान्त शुक्ल, उमेश अग्निहोत्री और अस्सी के दशक में सुषम बेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, उषा देवी कोल्हटकर, विशाखा ठाकुर, सुधा ओम ढींगरा, तथा अन्य रचनाकार। अमेरिका में 2000 के दशक में इलाप्रसाद, अमरेन्द्र कुमार व सौमित्र सक्सेना आदि हैं और इसी दशक की रचना श्रीवास्तव उदीयमान लेखिका हैं, जिनकी बाल-साहित्य पर ख़ासी पकड़ है। अमेरिका में रचे जा रहे साहित्य पर एक नज़र डालने का प्रयास किया है कि वहाँ बस गये हमारे देश के रचनाकारों के वहाँ लिखे जा रहे अपने लेखन में, अमरीका का परिवेश, स्थानीय जीवन, वहाँ के लोगों का व्यवहार, मेल-मिलाप, भारतीयों के प्रति स्थानीय लोगों का नज़रिया आया है या नहीं । जिन रचनाकारों ने प्रभावित किया और यह लेख लिखवाया, निश्चित रूप से उनकी रचनाओं में विविधता है, अमेरिका का परिवेश, वहाँ का रवैया, स्थानीय लोगों का बेग़ानापन खुलकर आया है। बेशक़ उनकी कहानियों के पात्र भारतीय हैं, नाम भारतीय हैं पर वे अमेरिका के माहौल में एडजस्ट होने, स्वयं को स्थापित करने के लिए लगातार कोशिश कर रहे हैं । जीवन मूल्य, परंपराएं बदल रही हैं और वे उन बदलते जीवन मूल्यों से समझौता करने की प्रक्रिया में किस तरह ख़ुद को झोंक रहे हैं, इन कहानियों में यत्र -तत्र बिखरा मिलता है ।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'संबंध' अमेरिकन परिवेश की कहानी है, जहाँ कोई आसानी से वैवाहिक बंधन में बंधने को तैयार नहीं होता। कहानी का नायक अस्पताल का एक सर्जन है, जो विवाहित है, और श्यामला से बहुत प्यार करता है। श्यामला भी उससे प्यार करती है, उसकी ज़रूरतों को समझती है। उसके साथ हमबिस्तर भी होती है। जब अस्पताल में कोई मरीज़ मर जाता है या कोई मरीज़ अच्छा हो जाता है तो वह सर्जन श्यामला से अपनी खुशी और दु:ख शेयर करता है। एक बार जब सर्जन श्यामला के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है, तो वह साफ इन्कार कर देती है, 'क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते, प्रेमी, मित्र, बन्धु। मैं तो कुछ भी नहीं मांगती तुमसे।' श्यामला वहाँ की ऐसी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो किसी एक व्यक्ति से बँधना नहीं चाहतीं। श्यामला की शर्त केवल यही है कि वे दोनों एक दूसरे पर प्रतिबंध नहीं लगायेंगे। कोई डिमांड नहीं करेंगे, दोनों में से कोई भी एक-दूसरे के प्रति ज़िम्मेदार नहीं होगा। जब भटकन की चाह बढ़ जायेगी, तब वह अपना सूटकेस उठाकर चल देगी। उषाजी की यह कहानी मन को तो परेशान करती ही है, लिव-इन-रिलेशनशिप के खोखलेपन का पर्दाफाश भी करती है।

सुषम बेदी की कहानी 'अजेलिया के फूल' उस अंग्रेज़ी परिवेश की कहानी है, जहाँ मिस्टर निक मिलर भारत से भारतीय पत्नी तो ले आते हैं, पर अपने समाज में स्वीकृति नहीं दिला पाते। मिसेज मिलर के शब्दों में, 'जब भी मैं निक के साथ इन अभिजात अमरीकियों के घर जाती हूँ, तो कहता कोई कुछ नहीं, पर जैसे उन आंखों में एक भाव रहता है, जैसे कि, मैं निक की कोई ग़लती हूं।' आगे वे कहती हैं, 'अब कुछ अजीब सा हो रहा है, ऐसा लगता है, मानो वह फिर से अपनी पहचानी दुनिया में जाना चाहता है। घर मेरे लिये आरामदेह

माहौल का ही नाम है, जिसे यों कहीं भी खोजा जा सकता है और कहीं भी खोया.....।' ये चंद वाक्य ही इस बात का द्योतक हैं कि अमेरिका में अपनी आज़ादी प्रमुख है। 'शादी' शब्द उनके लिये कोई मायने नहीं रखता। अजेलिया के फूल का बहुत ही सटीक प्रयोग किया है जैसे यह फूल हर जगह खिल जाता है, वैसे ही वहाँ रिश्ते बदलते, जीवनसाथी बदलते देर नहीं लगती और वे खुशी-खुशी अपने जीवन साथी को छोड़कर दूसरा साथी तलाश लेते हैं।

उमेश अग्निहोत्री की कहानी 'एक काली रात' अमेरिका के उस परिवेश और माहौल की कहानी है, जहाँ काले लोग रहते हैं। अमित का दोस्त हबीब अपने परिवार के साथ बाल्टीमोर रहने चला गया है, जो अफ्रीकी अमेरिकन लोगों की बस्ती है। अमित अपने पापा के साथ अपने दोस्त से मिलने बाल्टीमोर जाता है। दोनों दोस्तों के पिता पहली बार मिलते हैं, औपचारिक बातें करते हैं, पर कोई किसी के काम के बारे में नहीं पूछता। लेखक के अनुसार, 'मेरी तरह शायद वे भी अमरीकी संस्कृति का अंग बन चुके थे, जिसमें कोई किसी से यह नहीं पूछा करता कि आपका रोज़गार क्या है। बात यह सोचकर की जाती है कि तुम व्यक्ति से मिल रहे हो, उसके रोज़गार से नहीं।' अमित के पिता जब चलने को हुए तो हबीब के पिता इदरीसिया ने कहा कि उनके सम्मान में कुछ मित्रों को आमंत्रित किया है और तब अमित के पिता ने महसूस किया कि अफ्रीकी लोगों के साथ उनके व्यावसायिक परिवेश में मिलना और यहाँ उन्हीं के परिवेश में मिलना, दोनों बातों में कितना फर्क़ है। तो इस तरह बाल्टीमोर से वापिस आते समय अमित बहुत खुश था और उसके पापा गोरों के अपार्टमेंट से यहाँ की तुलना करने लगे, 'दूर दूर बने मकान, दरवाज़े बन्द, हर घर दूसरे से अपरिचित, किसीका किसी से मिलना-जुलना नहीं। जबकि अफ्रीकी लोगों की बस्ती में सब किस तरह साथ रहते हैं...उनके घरों के दरवाज़े किस तरह खुले रहते हैं...दिलों के दरवाज़े भी...' आगे वे कहते हैं, 'बाल्टीमोर के कला संग्रहालय में लगा गुस्ताव कूरबे का चित्र याद आया, 'घने पेड़ों के साथ-साथ एक नदी', 'एक काली तस्वीर, लेकिन मुझे लगा कि बात उस तस्वीर को देखने की नहीं, दरअसल उसमें जीने की है.. उसे जीने की है।'

विदेशों में ग़रीबी की रेखा से नीचे के लोगों को कूपन के रूप में सरकार से मिलनेवाली वित्तीय सुविधा, होमलेस लोगों को मुफ्त में मिलनेवाला भोजन और उनके लिये रात बिताने के लिये शेल्टर होम जैसी सुविधाओं ने, इन लोगों को किस तरह लालची और निष्क्रिय बना दिया है, इसी का जीता जागता लेखा जोखा है- सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है'। इस कहानी के पीटर और जेम्स चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने उस सारे परिवेश को बड़े ही सूक्ष्म तरीके से पाठकों के सामने रखा है। जेम्स के अनुसार, 'सरकार को कुछ करना चाहिये, हम जैसे बेरोज़गार, बेघर लोगों के लिये नि:शुल्क बसें चलानी चाहिये।'

विदेशों में ग़रीबी की रेखा से नीचे के लोगों को कूपन के रूप में सरकार से मिलनेवाली वित्तीय सुविधा, होमलेस लोगों को मुफ्त में मिलनेवाला भोजन और उनके लिये रात बिताने के लिये शेल्टर होम जैसी सुविधाओं ने, इन लोगों को किस तरह लालची और निष्क्रिय बना दिया है, इसी का जीता जागता लेखा जोखा है- सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है'। इस कहानी के पीटर और जेम्स चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने उस सारे परिवेश को बड़े ही सूक्ष्म तरीके से पाठकों के सामने रखा है। जेम्स के अनुसार, 'सरकार को कुछ करना चाहिये, हम जैसे बेरोज़गार, बेघर लोगों के लिये नि:शुल्क बसें चलानी चाहिये।' सरकार कूपन इस आशय से देती है कि ग़रीब भूखे न रहें, पर ये तथाकथित ग़रीब इन कूपनों को आधे-पौने दामों पर बेचकर अपने लिये लड़की और शराब का इंतज़ाम करते हैं। जेम्स के अनुसार, 'भाई, मँहगाई बहुत हो गई है, सस्ती से सस्ती लड़की भी पचास डॉलर से कम में नहीं चलती, अभी और डॉलर चाहिये।' लेखिका ने सरकार से ग़रीबों को मिलनेवाली सहायता के दुरुपयोग को बहुत नज़दीक से देखा है और पाठकों के सामने रखा भी उसी तरीके से है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अख़बारवाला' पाठकों को नि:स्तब्ध कर देनेवाली कहानी है। उन्होंने इस कहानी के माध्यम से विदेश के लोगों की स्वकेन्द्रिता, किसी के दुख-सुख में शामिल न होने की प्रवृत्ति को व मानसिकता को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से अपनी क़लम से उकेरा है। भारत से ब्याहकर अमेरिका में बसी जया वहाँ के लोगों के इस बेरुख़े, संवादहीन और असंवेदनशील व्यवहार को पचा नहीं पा रही। अपने पड़ोस के एक बूढ़े व्यक्ति की मौत के विषय में पड़ोसी रिक से पूछती है तो वे मृतक के बारे में बड़ा बेहूदा सा उत्तर देते हैं- 'यह उनका व्यक्तिगत मामला है।' यह सुनकर जया की मानो शिराएँ जम सी जाती हैं और वह यह सोचने पर विवश हो जाती है, 'आज तक वह सोचती थी कि शायद परदेसी होने के कारण ये लोग हमसे नहीं जुड़ पाते। लेकिन इनका तो आपस में भी जुड़ाव नहीं है।' जया इस बात को स्वीकार ही नहीं कर पाती कि विदेशों में मौत को भी इतने तटस्थ रूप में देखा जा सकता है। किसीकी आँखों में दो आँसू भी नहीं। इन्हें क्या कोई दु:ख दर्द नहीं व्यापता। जया के शब्दों में, 'ये लोग दु:ख में हमारी तरह चीखते-चिल्लाते नहीं। आँसू तक विशेष हिसाब से निकालते हैं। यहाँ जीवन को केवल जीवन समझकर जिया जाता है, वह भी अपने लिये...केवल अपने लिये। ठीक, स्वस्थ्य, भरपूर सुविधाओं से भरा-पूरा होना- जीने की अनिवार्य शर्त है। उसके बाहर सब मिथ्या है।' सुदर्शनजी की यह कहानी बहुत ही मार्मिक है और पाठकों को विदेशों की वस्तुस्थिति से परिचित कराती है। वहाँ हर इंसान को ख़ुद में ही बन्द रहना होता है। न एक-दूसरे से बोलना न चालना। फिर भी लोग अमेरिका में रहने को अभिशप्त हैं, इसे विडंबना ही कहा जा सकता

अमेरिका के हिंदी रचनाकारों की रचनाओं में अमेरिका धड़क रहा है। वे वहाँ मौजूद हैं, साँस ले रहे हैं, उनकी कहानियों के पात्र मुखर हैं। वे स्थानीय समस्याओं का सामना कर रहे हैं नकि तिकड़में भिड़ाते हुए समय ज़ाया कर रहे हैं। वे अपने लिये इज्ज़तदार जीवन जीने के लिये प्रयासरत हैं। ये कहानियाँ नॉस्टेल्जिक होकर भी वहाँ के माहौल में ख़ुद को ढालने की प्रक्रिया में हैं। ये कहानियाँ हमें भविष्य में हिंदी की बेहतर कहानियों की सौगात के लिये आश्वस्त करती हैं।

है।

पुष्पा सक्सेना की कहानी 'पीले गुलाबों के साथ एक रात' लिली और जेम्स के असफल प्रेम की कहानी है। जेम्स रिसर्च के लिये अमेरिका जाता है। रिसर्च पर जाने से पहले लिली की मम्मी और जेम्स की मम्मी दोनों की सगाई कर देती हैं। अमेरिका में जेम्स के जीवन में कैथरीन नामकी क्रिश्चियन लड़की आती है और वे वहाँ शादी कर लेते हैं। लिली अवाक रह जाती है। पाँच साल बाद जब जेम्स अपनी पत्नी और बेटे के साथ भारत वापिस आता है। लिली जम्मू में कॉलेज में नौकरी जॉइन कर लेती है और एक दिन अचानक ख़बर आती है कि जेम्स को दिल का दौरा पड़ा है और उसने ख्वाहिश व्यक्त की है कि उसका अन्तिम संस्कार हिन्दू विधि से किया जाये और लिली को ज़रूर सूचित किया जाये। यह सुनकर लिली का मन अन्दर तक भीग जाता है और वह जम्मू से दिल्ली और दिल्ली से इलाहाबाद जाने के लिए रवाना हो जाती है। ठीक-ठाक कहानी है। लेखिका ने कई जगह क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे कहानी के प्रवाह में रुकावट आती है।

इलाप्रसाद की कहानी 'हीरो' में एक बात खुलकर सामने आई है कि विदेशों में शादी टिक जाये, यह बहुत बड़ी बात होती है और इन तथाकथित देशों में यही संबंध टिक नहीं पाता। यहाँ गर्लफ्रैण्ड / बॉयफ्रैंड का रिवाज़ है, अनाम रिश्तों की दोस्ती का रिवाज़ है। इन सब बातों से रू-ब-रू होते हुए रवि की पत्नी कला किसी से भी मिलते समय परिचय देती है- 'आय म रविज वाईफ।' और महसूसती है सामनेवाले की आँखों का फर्क़। चकित होती है कि अमेरिका के वर्जनाहीन समाज में भी यह मायने रखता है। सम्मान पत्नी के ही हिस्से में आता है। वहाँ वैवाहिक जीवन में स्थायित्व दुर्लभ वस्तु हो गई है, शायद इसलिये भी। वह रवि की पत्नी है, कित्ती बड़ी बात!' इस कहानी के अन्य दो पात्र जिम और लिंडा अपने अपने पति/पत्नी को छोड़ चुके हैं और वर्तमान में ये दोनों मित्र के रूप में साथ रहना तो चाहते हैं पर एक दूसरे के बच्चों की ज़िम्मेदारी नहीं उठाना चाहते। फलत: वे पुन: अलग-अलग रहने लगते हैं और एक दूसरे का ध्यान रखते हैं। मेरे खयाल से अमेरिका जैसे विकसित देशों में जो अपनी स्वायत्तता का सवाल है वह वैवाहिक संबंधों को चलने ही नहीं देता। वे अपनी-अपनी डफली, अपना अपना राग बजाने की जीवन शैली में विश्वास रखते हैं और वैसे ही जीते भी हैं। इसे इलाप्रसाद ने बख़ूबी अपनी कहानी में दर्शाया है।

तो वहीं दूसरी ओर अमरेन्द्र कुमार की कहानी 'चिड़िया' है, जो किसी भी दूसरे देश में इंसान के अकेलेपन की कहानी है। इस कहानी का नायक अमेरिका में अकेला है। शोध कार्य करता है, उसके लिए लायब्रेरी में समय व्यतीत करता है और अन्तत: उसके अकेलेपन की साथी एक चिड़िया बनती है यानी प्रकृति। इंसान तो जैसे बस मशीनी जीवन जीते हैं। नायक के बीमार पड़ने पर चिड़िया ही उसके पास आती है और उसके स्पर्श से वह महसूस करता है, 'यहाँ स्नेह और अपनेपन का असर इतना ज़्यादा था कि मैं अपने आपको ज़ल्दी ही बेहतर महसूस करने लगा।'

इन कहानियों को पढ़ने के बाद मुझे यही लगा कि अमेरिका के हिंदी रचनाकारों की रचनाओं में अमेरिका धड़क रहा है। वे वहाँ मौजूद हैं, साँस ले रहे हैं, उनकी कहानियों के पात्र मुख़र हैं। वे स्थानीय समस्याओं का सामना कर रहे हैं ना कि तिकड़में भिड़ाते हुए समय ज़ाया कर रहे हैं। वे अपने लिये इज्ज़तदार जीवन जीने के लिये प्रयासरत हैं। ये कहानियाँ नॉस्टेल्जिक होकर भी वहाँ के माहौल में ख़ुद को ढालने की प्रक्रिया में हैं। ये कहानियाँ हमें भविष्य में हिंदी की बेहतर कहानियों की सौगात के लिये आश्वस्त करती हैं। अगर भारत के रचनाकार इन कहानियों से और अमेरिका के रचनाकार भारत की रचनाओं से महफ़ूज रहते हैं तो इस विषय में सुषम बेदी का यह विचार तर्कपूर्ण है, 'अच्छा साहित्य किस तरह यहाँ के लोगों तक पँहुचाया जाये, किस तरह उसको उपलब्ध कराया जाये, यह एक बड़ी समस्या है हमारे लिये। यह सच है कि जिन लोगों को रुचि है, वे भारत से मंगवा लेते हैं या आते-जाते अपने और दोस्तों के लिये ले आते हैं। पर यहाँ भारतीय माल को बेचनेवाले अगर साहित्य की पुस्तकें भी उपलब्ध करा सकें तो यह सवाल हमेशा माँग और बिक्री के सवाल से जोड़ दिया जाता है और बात जहाँ की तहाँ रह जाती है।' मेरे विचार से यदि भारत और अन्य देशों में लिखे जा रहे साहित्य को दोस्तों तक सीमित न रखकर आम पाठकों तक पहुँचाने के संसाधन तलाशे जाएँ तो आपसी दूरियाँ कम हो सकेंगी। इंटरनेट पर हम और आप कब तक एक दूसरे की रचनाओं को तलाशने में वक्त खपायेंगे। ज़रूरत इस बात की है कि विदेशों में लिखा जा रहा स्तरीय साहित्य भारत के पाठकों तक पहुंचे।

संदर्भ- अमेरिका के हिंदी कथाकार- विकिपीडिया। प्रवासियों में हिंदी साहित्य: दशा और दिशा- लेखिका- सुषम बेदी (अभिव्यक्ति वेब पत्रिका से लिया गया)।

shagunji435@gmail.com

विजय शर्मा (भारत)

प्रवासी हिन्दी साहित्य में विदेशी जीवन

साहित्यकार अपने समय और अपने समाज की उपज होता है। समाज को लेकर प्रवासी साहित्यकार की स्थिति थोड़ी- सी भिन्न होती है। वह निरंतर दो समाज के बीच चहलकदमी करता रहता है। मूल देश का समाज और प्रवासी देश का समाज दोनों उसके अपने होते हैं। पहली पीढ़ी के प्रवासी की स्थिति और बाद में आने वाली पीढ़ियों के अनुभव भी अलग-अलग होते हैं। इसी तरह यदि जो साहित्यकार प्रवासी होने के पहले से लिखता आ रहा है और जो प्रवासी होने के बाद लिखना प्रारम्भ करता है, दोनों का लेखन भिन्न होगा। मगर एक बात तय है कि प्रवासी लेखन के प्रारंभ में पीछे छूट गए देश का मोह अधिक नज़र आता है। उसे एक तरह का कल्चरल शॉक लगता है। वह स्मृतियों में डूबा साहित्य होता है। ज्यों-ज्यों वह प्रवासी देश में रचता-बसता जाता है उसका लेखन मूल देश से दूर और प्रवास के समाज से निकट होता जाता है। प्रवासी समाज से जुड़ता जाता है। उसके साहित्य में नया परिवेश अपना स्थान बनाता जाता है। वहाँ के सुख-दु:ख, संघर्ष, अंतर्द्वन्द्व, मूल्य, मूल्यों की टकराहट, ऊहापोह ज्यादा शिद्दत से परिलक्षित होने लगते हैं। वहाँ की भौगोलिक-पर्यावरण संबंधी बातें, सामाजिक संरचना, राजनैतिक-आर्थिक परिस्थितियाँ,धार्मिक-सांस्कृतिक परिवेश के साथ-साथ वहाँ की मानसिक बनावट भी उसके साहित्य पर प्रभाव डालने लगती है,उसका विषय बनने लगती है।

कुछ समय पहले तक प्रवासी हिन्दी साहित्य वहाँ के समाज से आ रहा था, जहाँ भारतीयों को जबरदस्ती और धोखे से गिरमिटिया मज़दूर के रूप में ले जाया गया था। जाहिर-सी बात है कि उनके साहित्य में दमन, शोषण की भरमार है। 'लाल पसीना' बह रहा है। चूँकि इन्हें मज़दूरी के लिए ले जाया गया था अत: अधिकतर या यूँ कहें तकरीबन सब-के- सब अनपढ़ थे। हद-से-हद कुछ लोग रामायण बाँचना जानते थे। मगर पिछली सदी के उत्तरार्ध में जो भारतीय प्रवास पर गए उनमें से ज्यादातर अपनी मर्जी से गए। इनके पास चुनाव का विकल्प था। ये पढ़े-लिखे लोग हैं। इन्होंने उन्हीं देशों को प्रवास के लिए चुना जो देश और समाज बेहतर जिंदगी दे सकते थे। ये नए प्रवासी आज दुनिया के कई देशों में फ़ैले हुए हैं। हिमांशु जोशी ''प्रतिनिधि आप्रवासी हिन्दी कहानियाँ'' की भूमिका में लिखते हैं,''लगभग तीन करोड़ आप्रवासी तथा भारतवंशी आज विश्व के लगभग चालीस देशों में रहते हैं। सबकी भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक स्थितियाँ भिन्न हैं।'' कहने का मतलब यह है कि आज भारतीय प्रवासी पूरे विश्व में फ़ैले हुए हैं। संचार और आवागमन की सुविधा के कारण ये अपने मूल देश भारत से भी जुड़े हुए हैं।

साहित्य में जीवन आता है, प्रवासी साहित्य में भी प्रवासी जीवन आएगा। जाहिर -सी बात है कि इन विभिन्न देशों में रहने वाले रचनाकारों के साहित्य में एक जैसा जीवन नहीं होगा। इनके साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी जीवन भिन्न-भिन्न होगा। इंग्लैंड से आने वाले साहित्य में जो जीवन दीखेगा वह नॉर्वे के प्रवासी जीवन से अलग होगा। अमेरिका में लिखे जा रहे साहित्य में जो जीवन होगा वह जापान की खुशबू लिये हुए नहीं हो सकता है। न ही डेनमार्क के साहित्य में प्रदर्शित प्रवासी जीवन जैसा होगा। इसी तरह पश्चिमी देशों से आने वाले प्रवासी साहित्य के जीवन से खाड़ी के देशों से आने वाले साहित्यिक जीवन की तुलना करें तो दोनों में बहुत फ़र्क नज़र आता है। पश्चिमी देशों में

विजय शर्मा
१५१ न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर ८३१ ००१
मोबाइल: ०९४३०३८१७१८
फ़ोन: ०६५७-२४३६२५१
ईमेल: vijshain@yahoo.com

जब भारतीय जाते हैं, तो उनकी दिली इच्छा वहीं बस जाने की होती है, और यह इच्छा काफ़ी हद तक पूरी होती है। अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों में कुछ समय रहने के बाद नियमों के तहत नागरिकता मिल जाती है। मगर खाड़ी के देशों में कितने भी समय रहने के बाद यह सुविधा नहीं है। आप अपनी मनमर्जी से कितने भी समय यहाँ नहीं रह सकते हैं। अबू धाबी, शारजाह, कुवैत आदि खाड़ी के देशों में प्रवास करारनामे पर होता है जो अक्सर तीन या पाँच साल का होता है। इसके बाद आपको लौटना ही होगा। ''इन कामगरों का करारनामा विशिष्ट रूप से दो से पाँच साल तक रहता है, अपना करारनामे के रोजगार की समाप्ति पर, नए कानूनी करार के योग्य होने तक इन्हें भारत लौटना ही है। खाड़ी के देश पारिवारिक प्रवास तथा यूनिफ़िकेशन या स्थायी निवास और नागरिकता

की बहुत कम संभावना देते हैं।'' वहाँ विदेशियों को नागरिकता नहीं दी जाती है। आप इन देशों में सदैव अस्थायी प्रवासी रहते हैं। यहाँ इस्लाम के अलावा किसी अन्य धर्म को खुलेआम अनुमति नहीं है अत: अन्य धर्म के लोग अपने रीति-रिवाज, तीज-त्योहार सार्वजनिक रूप से खुले में नहीं मना सकते हैं। जब यहाँ का हिन्दी साहित्यकार लिखता है तो जाहिर सी बात है ये सारी बातें आएँगी ही। यहाँ के प्रवासी हिन्दी साहित्य में प्रवासी जीवन ग्लोब के दूसरे हिस्सों के प्रवासी जीवन से हट कर होगा।

इसलिए जब हम प्रवासी हिन्दी साहित्य में प्रवासी जीवन की बात करते हैं तो हमें भिन्न-भिन्न तरह का प्रवासी जीवन देखने को मिलता है। यह सारा कुछ सब प्रवासी साहित्यकारों के लिखे में नहीं मिलता है। अधिकतर भारतीय प्रवासी लेखक नॉस्टाल्जिया में ही सारी जिंदगी गुज़ार देते हैं। वे अपने आप में इतने सिमटे, इतने खोए रहते हैं कि उन्हें आसपास की दुनिया की कोई खबर नहीं होती है। वे मानसिक घेरों में रहते हैं। प्रवास में रहते हैं मगर एक अपराध ग्रंथि मन में पाले रहते हैं, उन्हें लगता है कि उन्होंने अपना देश छोड़ कर कोई गुनाह किया है और वे इस गुनाह के मार्जन के लिए भारत के गुण गाए जाते हैं। उन्हें भारत का सब कुछ अच्छा और स्वर्गिक लगता है। भारत भी बदल चुका है, इसे मानने को वे कतई तैयार नहीं। वे सदैव अतीत में जीते हैं। कभी सच्चाई को आँख-कान खोल कर नहीं जानना चाहते हैं। अपने आपमें गुम ये लेखक दूसरों के लिखे को न तो जानते हैं, न पहचानना चाहते हैं। न ही किसी के लिखे को पढ़ते हैं। स्मृतियों में जीते हुए ये नहीं जानते है कि साहित्य में क्या-क्या हो रहा है। इन्हें खबर नहीं कि इनके आसपास कितना कुछ घट रहा है। ऐसे लोगों के लेखन में प्रवासी जीवन दूर की बात देश के आज के जीवन की भी वास्तविक झाँकी नहीं मिलती है।

जिन प्रवासी रचनाकारों के काम में प्रवासी जीवन आधिकारिक रूप से मिलता है, उनकी गिनती अंगुलियों पर की जा सकती है। इनके साहित्य में प्रवासी जीवन तीन रूप में दीखता है। एक भारतीय प्रवासी जीवन, दूसरा उस देश में अन्य देशों के प्रवासियों का जीवन और तीसरा उसी देश के लोगों

तेजेंद्र शर्मा के 'अभिशप्त' में बाहर भयंकर ठंड पड़ रही हो, बर्फ़ और पाला पड़ रहा हो मगर ''बेडरूम में बिजली-चालित कंबल की गर्मी में आराम की नींद सो रहे हैं - निशा और हैरी।'' इसकी भी परवाह नहीं है कि भौतिक सम्पन्नता के बावजूद रजनीकांत किस नरक में रहने को अभिशप्त है।

का जीवन, वहाँ की सभ्यता-संस्कृति में पले-पगे लोगों का जीवन। इनके साहित्य में भारतीय प्रवासी जीवन का निरीक्षण करने पर कुछ बातें स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती हैं, मसलन पहली नज़र में प्रवासी जीवन बहुत खुशहाल नज़र आता है। भौतिक सम्पन्नता, सुख-सुविधाओं से लैस जीवन। थोड़ा और गहराई से देखने पर मानसिक ऊहापोह, मूल्यों का टकराव, प्रवास की दुश्वारियाँ, लौटने की आंतरिक तीव्र लालसा, न लौट पाने का दंश, विवशता, छटपटाहट। प्रवासी साहित्य में भारतीयेतर प्रवासियों का जीवन भी कुछ रचनाकारों ने चित्रित किया है। विशुद्ध रूप से उस देश के लोगों का जीवन दिखाने वाला प्रवासी हिन्दी साहित्य विरल है। इसके अलावा भी कई अन्य प्रकार के प्रवासी जीवन हैं। एक जीवन है गैरक़ानूनी प्रवासी जीवन और उससे जुड़े लोगों की समस्याएँ। एक अन्य प्रवासी जीवन है। यह सामान्य प्रवासी जीवन से भिन्न है। इसकी अभिव्यक्ति प्रवासी साहित्य में मिलती है, हालाँकि जितनी मिलनी चाहिए, उतनी नहीं मिलती है। यह है स्त्री जीवन, पारिवारिक हिंसा (जिसका शिकार अधिकतर स्त्री और बच्चे होते हैं, कभी-कदा पुरुष भी)। जबकि आँकड़े बताते हैं कि उन्नत देशों में भी पारिवारिक हिंसा के मामलों की संख्या काफ़ी है। यह एक मानवीय प्रवृत्ति है कि वह यातना को याद नहीं करना चाहता है। दु:खद स्मृतियों से बचकर रहना चाहता है। शायद इसीलिए अत्याचार-क्रूरता सामान्य साहित्य में बहुत कम आता है। एक अन्य तरह का जीवन भारतीय प्रवासी साहित्य में देखने को नहीं मिलता है (शायद हो, पढ़ने की मेरी अपनी सीमा है) जबकि यह सारे देशों में व्याप्त है। यह है लेस्बियन तथा गे जीवन। भिन्न देशों के समाज में इनकी क्या स्थिति है, समाज इनके साथ कैसा व्यवहार करता है, कैसा है इनका निजी जीवन? इस पर प्रवासी हिन्दी साहित्य मौन है। जबकि यह एक बहुत बड़ी सच्चाई है। बाल साहित्य की कमी पूरे हिन्दी साहित्य का दुर्बल पक्ष है। प्रवासी हिन्दी साहित्य में भी यह न के बराबर है। खैर जो नहीं है उसकी बात छोड़ दें, जो है उसी का परीक्षण-निरीक्षण किया जाए।

प्रवासी साहित्य में प्रवासी जीवन की खोज में सबसे पहले हमारी नज़र में उनकी भौतिक सम्पन्नता आती है। अगर भौतिक सुख-सुविधा का ध्यान न होता तो भला आज का भारतीय जाता ही क्यों प्रवास में, अपना देश छोड़ कर? देश की गरीबी और बेरोज़गारी और विदेश में बेहतर जीवन की संभावनाओं की अपेक्षा से भारतीय विदेश जाते हैं और उन्हें एक सुविधाजनक जीवन मिलता भी है। गरीबी की मार झेलता और उससे निजात पाने को बेताब सुधा ओम ढींगरा के 'फ़ंदा' का मोहन अमेरिका जाता है। उसके शुरू के कई साल बहुत कठिनाई में गुज़रते हैं। मगर आज ''उसने काफ़ी जमीन खरीद ली और वह अमरीका का किसान सरदार मोहन सिंह हो गया, तीन बेटों और दो बेटियों का बाप, सौ एकड़ जमीन का मालिक, चार मंजिला घर है जिसका, गैराज में मँहगी कारें खड़ी हैं, बेटों के दो गैस स्टेशन और दो मोटल हैं।'' धन्य-धान्य से भरापूरा किसान है मोहन।

तेजेंद्र शर्मा के 'अभिशप्त' में बाहर भयंकर ठंड पड़ रही हो, बर्फ़ और पाला पड़ रहा हो मगर ''अंदर बेडरूम में बिजली-चालित कंबल की गर्मी में आराम की नींद सो रहे हैं - निशा और हैरी।'' उन्हें इसकी भी परवाह नहीं है कि भौतिक सम्पन्नता के बावजूद रजनीकांत किस नरक में रहने को अभिशप्त है। 'कब्र का मुनाफ़ा' का खलील ज़ैदी लंदन के फ़ाइनेंशियल सेक्टर में ऊँची पोस्ट पर है। उनका दोस्त नजम जमाल भी उसी की हैसियत का है। अचला शर्मा 'मेहर चंद की दुआ' का मेहर नाई का काम करके भी सुखी है। आज का प्रवासी अपना देश छोड़कर बेहतर जीवन की तलाश में

इंग्लैंड जाता है। वहाँ मेहनत से अच्छी आमदनी हो सकती है। होती भी है। मेहर बाल काट कर भी इस स्थिति में है कि स्वास्थ्य बनाने के लिए जिम जा सकता है। फ़्लैट में रह सकता है। अपनी बीवी को हर महीने बच्चों की परवरिश के लिए अच्छी खासी रकम अपने मूल देश भेज सकता है।

उषा राजे सक्सेना की 'शन्नो' का सुभाष लंदन के गीत गाता रहता है, ''यहाँ की सड़कें शीशे-सी चमकती हैं। रोशनी इतनी तेज होती है। सब कुछ ऐसा साफ़-सुथरा कि कुछ मत पूछो। सारे दिन घूमते रहो। मन करे खाना बनाओ, न मन करे तो टेक अवे' से लो। न झाड़ू लगाना, न कपड़े धोना। सब काम मशीनों से होता है।'' शन्नो भी जब लंदन पहुँचती है तो चकित है, उसे ''सब चीजें साफ़-सुथरी। रोज बासमती राइस और चिकेन खाओ। सफ़ेद झकाझक आटे की रोटी। दूध-दही इफ़रात।'' अर्चना पैन्यूली की 'एन आर आई' का कथावाचक अमेरिका के लिए निकलता है लेकिन डेनमार्क पहुँचता है। वह भी कोपेनहेगन के विषय में कहता है, ''शहर साफ़-सुथरा व प्राकृतिक नजारा सुंदर है।'' उसका अनुभव है, ''इस मुल्क में काम कितना भी छोटा हो, वेतन उचित होता है।'' आगे वह बताता है, ''यहाँ मजदूर व अधिकारी के बीच का भेदभाव उतना बड़ा नहीं होता जितना कि अपने मुल्क में। यहाँ सभी एक जैसा दिखते हैं। सभी एक जैसा पहनते हैं, एक जैसा खाते हैं। सभी के पास कार व रहने का मकान है। सबसे बड़ी बात यहाँ सभी की इज्जत है। विदेशी मुद्रा मेरे पास ठनठना कर आने लगी। अपने देश में छः-सात हजार कमाने वाला मैं यहाँ साथ-सत्तर हजार कमाने लगा था। दो साल में ही मैंने इतने कोनर कमा लिए कि हिन्दुस्तान रुपए भेज कर अपने भाई व पिता पर चढ़ा सारा कर्ज चुका दिया। अपनी बहन के गिरवी पड़े गहने छुड़ा कर उसके लिए और नए बनवा दिए। मैं घर वालों को लगातार रुपया भेजता गया।'' इतना ही नहीं मोनिर के साथ मिल कर वह जल्द ही एक ढंग के फ़्लैट में रहने लगा और उसके संग मिल कर उसने अपना नया व्यापार भी प्रारंभ कर दिया। जिससे उन लोगों को बहुत अच्छी आमदनी होने लगी। तीन वर्षों बाद वह खूब कमा कर अपने देश भारत जाता है। इस तरह प्रवासी साहित्य में पहली नजर में प्रवासियों का जीवन बहुत खुशहाल और भौतिक सुख-सुविधाओं से भरपूर नजर आता है।

अर्चना पैन्यूली की 'एन आर आई' का कथावाचक अमेरिका के लिए निकलता है लेकिन डेनमार्क पहुँचता है। वह भी कोपेनहेगन के विषय में कहता है, ''शहर साफ़-सुथरा व प्राकृतिक नजारा सुंदर है।''

प्रवासी हिन्दी कहानी में भारतीय प्रवासी का जीवन आना स्वाभाविक है यह प्रायः सब कहानियों में मिलता है। कई प्रवासी हिन्दी कहानी में भारतीयेतर लोगों की उपस्थिति भी मिलती है। तेजेंद्र शर्मा की 'कब्र का मुनाफ़ा', 'एक बार फ़िर होली' में ब्रिटेन में रह रहे पाकिस्तानी जीवन की झाँकी मिलती है। अचला शर्मा की 'रेसिस्ट' दिखाती है कि लंदन हादसे के बाद मुस्लिम जन-जीवन किस घुटन में रह रहा है। उनकी 'मेहरआलम की दुआ' का मेहरचंद भी भारतीय नहीं है, न ही उसकी साथिन भारतीय है। उषा राजे सक्सेना की 'अस्सी हूरें, शीराज़ और जूलियाना' भी ऐसी ही कहानी है जिसमें ब्रिटेन और पाकिस्तान के लोगों का चित्रण है। मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी के अनुसार 'डॉन के शहर से कहानियाँ' लिखने वाले कृष्ण बिहारी काफ़ी समय से अबू धाबी में रह रहे हैं। यह एक मुस्लिम देश है। अतः यहाँ का प्रवासी जीवन ब्रिटेन और अमेरिका के प्रवासी जीवन से भिन्न है। तेल के उत्पादन के साथ खाड़ी के देशों में प्रवासियों की संख्या बढ़ गई। फ़िर भी यहाँ मुस्लिम जनसंख्या की बहुलता है। एक ही धर्म मानते हुए भी ये प्रवासी अपने साथ-साथ अपने अपने देश की संस्कृति, अपने विचार-व्यवहार भी लाते हैं। इनकी 'सर्वप्रिया', 'लूला हैदर' दोनों कहानियाँ अत्यंत खूबसूरत मगर दृढ़ चरित्र की स्त्री के विषय में है। 'सर्वप्रिया' की नायिका सूडानी मूल की ब्रिटिश नागरिक है तथा अबू धाबी के एक इंडियन स्कूल में काम करती है। 'लूला हैदर' की लूला फ़िलीस्तीन से भाग कर अमेरिका में बसी स्त्री है। वह सीरिया में पैदा हुई है। उसके पति भी जोर्डन के थे मगर अब अमेरिकी नागरिक हैं। भूमंडलीकरण के दौर में ऐसे पात्र मिलना कोई अजूबा नहीं है। कृष्ण बिहारी की 'नातूर', 'बेगैरत कमेटी का मकान', 'सर्वप्रिया', 'लूला हैदर' ऐसी ही कुछ कहानियाँ हैं जिनमें भारतीयेतर जीवन चित्रित है।

प्रवास देश के मूल लोगों का जीवन प्रवासी हिन्दी कहानी में बहुत कम मिलता है। उसी देश के लोगों को पात्र बना कर बहुत कम कहानीकारों ने लिखा है। आगे शायद ऐसी बहुत सी कहानियाँ हिन्दी में आएँ। जिन कहानियों में मात्र प्रवास देश के लोगों का जीवन चित्रित है ऐसी कुछ कहानियाँ मेरी नजर से गुजरी है। इस आलेख में ऐसी ही कहानियों को लिया गया है। ब्रिटेन से तेजेंद्र शर्मा की 'पापा की सजा', 'इंतजाम', ज़किया ज़ुबेरी की 'मारिया', अचला शर्मा की 'चौथी ऋतु'। अमेरिका से सुधा ओम ढींगरा की 'सूरज क्यों निकलता है' ऐसी ही कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न परिवेश की कहानियाँ हैं अतः बहुत भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ जगाती हैं। हमें विभिन्न संस्कृति-संस्कारों से परिचित कराती हैं। विभिन्न संस्कृतियों-संस्कारों को जानने-समझने का अवसर देती हैं। ताकि बिना जजमेंटल हुए हम ऐसे लोगों को स्वीकार सकें। इन कहानियों से हिन्दी साहित्य संसार का विस्तार होता है। ये कहानियाँ हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिए नए गवाक्ष खोलती हैं।

तेजेन्द्र शर्मा की 'पापा की सजा' एक सत्य घटना को आधार मान कर रची गई कहानी है। पापा बेटी की कहानी में माँ की उपस्थिति या गैर उपस्थिति कहानी का आवश्यक अंग है। इसी तरह कथावाचक के पति केनेथ की उपस्थिति बहुत कम समय के लिए होते हुए भी बहुत महत्वपूर्ण है। मनुष्य का मन बहुत विचित्र है कब क्या कर बैठे बताना कठिन है। मानव मन की गुत्थियों को दर्शाती यह कहानी इस बात को शिद्दत से रेखांकित करती है कि अत्यधिक प्रेम और प्रिय व्यक्ति के लिए होने वाली चिंता जीवन को अप्रत्याशित मोड़ दे सकती है। जेनी के पापा मिस्टर ग्रीयर के छोटे भाई की मृत्यु कैंसर से हुई है। उन्हें शक है कि वे भी इस बीमारी की चपेट में हैं। वे अस्पताल जाकर

चेकअप भी नहीं कराते हैं, क्योंकि ''उनकी माँ अस्पताल गई, लौटकर नहीं आई। पिता गए तो उनका भी शव ही लौटा।'' दोनों ही बातें लोगों के जीवन में घटती ही हैं। मगर मानव मन अपनी लिए तर्क गढ़ लेता है। मिस्टर ग्रीयर को अपनी मृत्यु की उतनी चिंता नहीं है जितनी चिंता अपने बाद पत्नी के जीवन को लेकर है। इसका कारण है। आज तक उनकी पत्नी ने बाहर का कोई काम नहीं किया है। वे अपनी पत्नी मार्ग्रेट से कहते हैं, ''अगर मुझे कुछ हो गया, तो तुम मेरे बिना कैसे जिंदा रह पाओगी? तुम्हें तो बैंक के अकाउंट, बिजली का बिल, काउंसिल टैक्स कुछ भी करना नहीं आता है।'' कोर्ट की जब उन्हें सजा सुनाता है तो कहता है, ''उनके इस व्यवहार का कारण अपनी पत्नी के प्रति अतिरिक्त प्रेम की भावना है।''

मार्ग्रेट पति के दिन रात पेट दर्द को किसी प्रेतात्मा का साया लगता है जबकि बेटी को यह कोई मानसिक परेशान लगती है। कहानी सांकेतिक रूप से पीढ़ियों की सोच के अंतर को रेखांकित करती है। ऑक्सी विलेज में रह रहे ग्रीयर उकता कर रेलवे स्टेशन पर जा बैठते हैं और आती-जाती रंगीन रेलें देखते रहते हैं। गौर तलब है कहानीकार खुद भी ब्रिटिश रेलवे से जुड़ा हुआ है। मगर मरने की दहशत से मरते हुए आदमी का रंगबिरंगी ट्रेन निहारना एक कॉन्ट्रास्ट पैदा करता है। जिंदगी रंगीन हो सकती है मगर कैंसर के वहम वाले व्यक्ति की जिंदगी बहुत धूसर, बहुत बेरंग होगी और उसकी आँखों के सामने से रंग-बिरंगी रेले गुजर रही हैं। ''वर्जिन ट्रेंस की लाल, काली और कॉनेक्स कम्पनी की पीली तेज रफ़्तार गाड़ियाँ, धड़ाधड़ करती वहाँ से निकल जाया करतीं। और फ़िर सिल्वर लिंक की ठुक-ठुक करती हरी और बैंगनी रेलगाड़ियाँ जो कार्पेडर्स पार्क रुकती। वाटफ़र्ड से लंदन यूस्टन तक की गाड़ियाँ - स्कूल जाते बच्चे, काम पर जाते रंग-रंगीले लोग।''

ग्रीयर की हरकतें अजीबोगरीब होती जाती हैं और वे एक दिन अपनी पत्नी की हत्या कर देते हैं। पुलिस को अपने जघन्य कर्म की खुद ही सूचना भी देते हैं। बेटी एक बैंक की असिस्टेंट मैनेजर है मगर नहीं जानती है कि अपने पापा को कैसे मैनेज करे। मुकदमे के समय भी वह बहुत परेशान और लाचार है। उसे ''समझ में नहीं आ रहा था कि मैं किस तरफ़ से अदालत में जाऊँ। हत्या माँ की हुई थी और हत्यारे थे पिता।'' अदालत ग्रीयर को सजा सुनाती है, ''वे अपनी बाकी जिंदगी किसी ओल्ड पीपुल्स होम में बिताएँ। उन्हें वहाँ से बाहर नहीं जाने की इजाज़त नहीं दी जाएगी। लेकिन उनकी पुत्री या परिवार का कोई भी सदस्य जेल के नियमों के अनुसार उनसे मुलाकात कर सकता है।'' बेटी काफ़ी समय तक पापा से मिलने नहीं जाती है। उसके मन में बहुत ऊहापोह है। उसे नहीं लगता है कि वह अपने पापा को कभी माफ़ कर पाएगी। एक बार जब वह जाती है तो देखती है, ''पापा शून्य में ताके जा रहे थे। कहीं दूर खड़ी माँ से बातें कर रहे थे।'' जेनी को लगता है कि पापा को जो सजा मिलनी चाहिए थी वह मिल गई है वह उनसे बिना मिले लौट आती है। कहानी की अंतिम पंक्ति है, ''जाओ पापा मैंने तुम्हें ममी का खून माफ़ किया।'' एक संवेदनशील विषय पर लिखी गई एक संवेदनशील कहानी।

ज़किया ज़ुबेरी की 'मारिया' के भी दोनों प्रमुख पात्र ब्रिटिश हैं। इसके पात्रों की संस्कृति, उनके संस्कार भारतीयों से बहुत भिन्न हैं। यह भी बेटी से संबंधित कहानी है मगर यह बेटी 'पापा की सजा' की जेनी से बहुत अलग है। कहानी एक बहुत संवेदनशील मुद्दे पर आधारित है।

भारत में अभी भी संयुक्त परिवार की प्रथा कायम है, भले ही परिवार के सदस्य भौतिक रूप से एक स्थान पर न रहते हों मगर मानसिक रूप से वे एक बड़े परिवार के सदस्य होते हैं। भावात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े, एक दूसरे के बहुत निकट। भारतीय संस्कृति समूहवादी है। अत: भारतीय पाठक को यह कहानी विचित्र लग सकती है मगर ब्रिटेन में एकल परिवार की प्रथा है। वे व्यक्तिवादी संस्कृति के पोषक हैं। अत: पति को चिंता है कि उसके बाद पत्नी अकेली कैसे रहेगी। बेटी अपने पति के साथ रहती है। इस कहानी के सारे पात्र ब्रिटिश यानि अंग्रेज हैं। एक पति अपने न रहने पर भोली-भाली पत्नी को होने वाली तकलीफ़ों की कल्पना मात्र से अपनी भावनाओं पर नियंत्रण खो देता है और अपनी पत्नी की हत्या जैसा जघन्य कार्य कर डालता है। अपने बेहद प्रिय पापा द्वारा किए गए इस हादसे को बेटी सहन नहीं कर पाती है। ऐसी स्थिति में एक बेटी किस ऊहापोह से गुजरती है संवेदनशील पाठक सहज ही इसकी अनुभूति कर सकता है। पापा को सजा होती है, साथ ही बेटी भी सजा भुगतती है। वह अपने पिता को सजा देना चाहती है, सजा देती है। क्या वह कभी पूरी तरह से सुखी हो सकेगी? तेजेंद्र शर्मा की इस कहानी की उतनी चर्चा नहीं हुई जितनी की यह हकदार है।

ज़किया ज़ुबेरी की 'मारिया' के भी दोनों प्रमुख पात्र ब्रिटिश हैं। इसके पात्रों की संस्कृति, उनके संस्कार भारतीयों से बहुत भिन्न हैं। यह भी बेटी से संबधित कहानी है मगर यह बेटी 'पापा की सजा' की जेनी से बहुत अलग है। कहानी एक बहुत संवेदनशील मुद्दे पर आधारित है। मार्था अपनी किशोरवय की बेटी मारिया को लेकर क्लीनिक में आई है। क्लीनिक जहाँ गर्भपात किया जाता है। कहानी की शुरुआत इस कुकर्म से होने वाली शर्म से होती है, ''सभी एक दूसरे से आँखें चुरा रहे थे। अजब माहौल था। हर इंसान पत्र-पत्रिकाओं को इतना ऊँचा उठाए पढ़ रहा था कि एक दूसरे का चेहरा तक दिखाई नहीं दे रहा था।'' इस कर्म में सब जाति और देश के लोग शामिल हैं। सच में गर्भपात एक शर्मनाक कर्म है। हाँ जिनके कारण अर्थात् पुरुष के कारण इस कुकर्म की नौबत आती है वे बेफ़िक्र हैं, क्योंकि उन्होंने सारा दोष औरतों के सिर पर डाल रखा है, ''जो मुजरिम थे वो शांत और बेफ़िक्र बैठे थे, जैसे उन्होंने कोई जुर्म किया ही न हो। मुजरिम पैदा करने वाली तो बस माँएँ थीं।''

मारिया अंदर है और बाहर मार्था बहुत बेचैन है। इस बेचैनी में वह उस व्यक्ति को बार-बार याद करती है जिसके साथ उसे सदा सकून मिलता था। जिस व्यक्ति को वह प्यार करती थी और जो उसे शिद्दत से प्यार करता था। ''मार्था का जी घबराने लगा और बेइख़्तियार जी चाहने लगा कि दौड़ कर

किसी अँधेरे कमरे में जा कर, किसी की बाहों में मुँह छुपाकर अपने सारे दुख उसकी सफ़ेद शर्ट की आस्तीन में ख़ुश्क कर दे। वह अपना दायाँ हाथ मार्था के बालों में फेरता रहे, पेशानी पर प्यार करता रहे।'' इस कठिन और परेशानी की घड़ी में वह अपने एक समय के प्रेमी को बहुत याद करती है। उसका भरोसा चाहती है। कहानी मार्था और इस व्यक्ति के संबंध का कोई खुलासा नहीं करती है बस दोनों एक दूसरे को टूट कर चाहते हैं यही बताती है। यह संबंध सामाजिक स्वीकृति से नहीं बना है यह स्पष्ट है क्योंकि मार्था सदैव उससे रात को मिला करती थी और अलार्म बजने पर सुबह होने से पहले अपने घर चली जाया करती थी।

मार्था बेटी के गर्भपात से दु:खी और शर्मिंदा है। जब नर्स उससे मारिया का पूरा नाम और उम्र पूछती है तो मार्था नहीं चाहती है कि वहाँ बैठे दूसरे लोग इन बातों को जाने। ''नर्स ने पूछा, ''मारिया का पूरा नाम क्या है?.. और उम्र क्या है?

मारिया का नाम जैसे मार्था के हलक में अटक गया हो। जैसे उसका जी चाह रहा हो कि मारिया का नाम छुपा ले। कहीं यहाँ बैठी सारी औरतों को न मालूम हो जाए कि मारिया ने क्या किया है। और उम्र के बारे में तो सोचते ही जैसे उस पर बेहोशी-सी छाने लगी थी। पंद्रह साल की कुँवारी माँ मार्था एक बार फिर काँप उठी। शर्म से पानी पानी होने लगी।''

उसकी बेटी मारिया ने उसका भरोसा तोड़ा है। ''मारिया, जो उसकी साथी होती, जिसको माँ हमेशा अपना दोस्त, अपनी साथी और अपना सहारा समझती रही, वह माँ को बताए बग़ैर सब कुछ कर गुज़री। माँ के भरोसे को किस क़दर ठेस पहुँचाई।'' एक उम्र के बाद माँ-बेटी सहेलियों की तरह हो जाती हैं। तब मारिया ने बात क्यों छिपाई, खासकर जिस परिवेश और संस्कृति की कहानी है वहाँ तो प्रेम का इजहार डंके की चोट पर किया जाता है। मगर मारिया ने यह बात अपनी माँ से साझा क्यों नहीं की यह रहस्य कहानी के अंत में खुलता है।

मार्था काफ़ी देर एक बेंच पर बैठी एक समय के अपने बरसों-बरस चलने वाले प्यार को याद करती रहती है। मार्था स्मृति में डूब जाती है। कहानी में प्रेम के बहुत संवेदनशील और नाजुक पलों का बहुत खूबसूरती से चित्रण हुआ है। कितना भरोसा था उसे उस आदमी पर। अचानक उसे समय का भान होता है, वह वर्तमान में लौट आती है। समय हो गया है वह क्लीनिक जाती है और वहाँ से मारिया को लेकर बाहर आती है। मारिया इस हादसे से बहुत कमजोर हो गई है। ''मारिया ने माँ के कंधे पर सिर रख दिया। माँ ने उसके हाथ पकड़ लिये। हाथ बिल्कुल ठंडे बर्फ़ हो रहे थे। माँ अपने हाथों से जल्दी-जल्दी उसके हाथ मलमल कर गरम करने लगी। माँ को महसूस हुआ कि मारिया का रंग संगमरमर की तरह सफ़ेद हो रहा है। होंठो का गुलाबी रंग उड़ चुका है। घने सुनहरे बाल उलझे हुए कंधों पर पड़े हुए हैं।'' माँ का दिल पिघल उठता है। यहाँ एक वाक्य आता है, ''मारिया में माँ की सी पवित्रता पैदा हो चुकी थी।'' इस वाक्य का इस स्थान पर कोई औचित्य नजर नहीं आता है। गर्भपात के तत्काल बाद किसी किशोरी के चेहरे पर मातृत्व का भाव कैसे हो सकता है चाहे वह अंग्रेज लड़की ही क्यों न हो।

''सुरक्षा का अहसास किस कदर यक़ीन पैदा करता है ! प्यार में कितनी परिपक्वता पैदा हो जाती है! चाहत किन हदों को छूने लगती है! यह केवल दो सच्ची मुहब्बत और एक दूसरे से ख़ुलूस बरतने वाले और एक दूसरे पर यक़ीन रखने वाले ही समझ सकते हैं।'' मगर कहानी का अंतिम वाक्य इस सारे यकीन को तोड़ देता है। लौटारी में मार्था बार-बार पूछती है कि आख़िर मारिया ने किसकी मोहब्बत में ऐसा काम किया है। मारिया माँ की गोद में मुँह छिपा कर जो उत्तर देती है वह पूरी कहानी को एक नया मोड़ दे देती है। पाठक को एक झटका लगता है। ''मारिया ने चेहरे को और ज़्यादा अंदर घुसाते हुए घुटी आवाज़ में कहा, ''माँ जिसके पास तुम जाती थीं!'' जिस समाज की बात हो रही है वहाँ माँ का प्रेमी या पति उस आदर और सम्मानजनक दूरी का हकदार नहीं होता है जैसा कि भारत में आशा की जाती है। बेटी ने माँ को उस आदमी के पास जाते देखा है। उस आदमी के प्रति बेटी में लगाव होना कोई अजूबा नहीं है। कहानी नहीं बताती है कि किन परिस्थितियों में मारिया और वह व्यक्ति करीब आए। हाँ कहानी यह अवश्य बताती है कि मार्था अब उम्रदराज हो चुकी है। ''आज जब मार्था अकेली है, बग़ैर पत्तों के दरख़्तों के नीचे तन्हा और उदास बैठी थी। ये दरख़्त भी मार्था को अपनी ज़िंदगी का प्रतिबिंब दिखाई दे रहे थे। जो ज़िंदगी की बहारें देखने के बाद पतझड़ के हत्थे चढ़ चुके थे। जिनकी ख़ूबसूरती और जवानी पतझड़ की भेंट हो चुकी थी। अब केवल पीले, सुनहरे, भूरे और नारंगी पत्ते ही बहार गुज़र जाने की कहानी कह रहे थे।'' क्या इसी कारण उस व्यक्ति ने मारिया से संबंध बनाया है? वह एक संवेदनशील व्यक्ति है फ़िर ऐसा कैसे हुआ? क्या वह जानता है कि मारिया कौन है? क्या वह जानता है कि मारिया किस हादसे से गुजर रही है? क्या मारिया ने उसे बताया था कि वह गर्भवती हुई है? कहानी इन बातों का उत्तर नहीं देती है। इस पक्ष पर कहानी मौन है। एक बात सत्य है कि एक पंद्रह वर्ष की किशोरी को गर्भपात जैसे हादसे से गुजरना पड़ा है।

कहानी 'मारिया' में कुछ बहुत संवेदनशील प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। मार्था जब बाहर इंतजार कर रही थी वह बेखुदी में चलती जाती है। मार्था भलिभाँति जानती है कि मारिया के साथ इस समय क्या हो रहा है। उसकी मानसिक स्थिति को दर्शाती हुई कुछ पंक्तियाँ बहुत सुंदर और मार्मिक बन पड़ी हैं, ''पतली-सी एक पगडंडी थी जिसके दोनों ओर शाह-बलूत के पेड़ अपने हरे-हरे पत्तों से मुक्ति पा चुके थे। काली-काली शाखें लिए नंग-धड़ंग, लजाए-लजाए, शर्मिंदा-शर्मिंदा से खड़े थे। पीले और आग के रंग में रंगे हुए पत्ते मार्था के कदमों के नीचे दब-दब कर ऐसे कराह रहे थे जैसे किसी बच्चे का गला घोंटा जा रहा हो। जो हाथ बढ़ा-बढ़ा कर सहायता माँग रहा हो, गिड़गिड़ा कर प्रार्थना कर रहा हो कि मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। मेरा क्या कसूर है? मैंने क्या अपराध किया है? मुझे किस बात की सजा दी जा रही है?'' सत्य है, गर्भ

यही मौसम कहानीकार अचला शर्मा को 'चौथी ऋतु' जैसी अनोखी कहानी की रचना के लिए प्रेरित करता है। अपनी प्रिय कहानी 'चौथी ऋतु' में वे आज के व्यस्त जीवन में बुजुर्गों की स्थिति का जायजा लेती है।

के बच्चे का क्या कसूर होता है जो उसे नष्ट कर दिया जाता है। उसे समाज में अपनी इज्जत के झूठे दंभ में समाप्त कर दिया जाता है। यह छोटी-सी कहानी काफ़ी कुछ कहती है।

रचनाकार अपने भौतिक परिवेश से प्रभावित होता है। इसी कारण नोबेल पुरस्कृत कवि टॉमस ट्रास्ट्रोमर के यहाँ विभिन्न मौसम देखने को मिलते हैं। मौसम क्योंकि उनके देश का मौसम दुनिया के अन्य स्थानों से भिन्न है। कभी बहुत ज्यादा रौशनी कभी बहुत अँधेरा। भौतिक परिवेश का एक प्रमुख कारक मौसम होता है। यही मौसम कहानीकार अचला शर्मा को 'चौथी ऋतु' जैसी अनोखी कहानी की रचना के लिए प्रेरित करता है।

अपनी प्रिय कहानी 'चौथी ऋतु' में वे आज के व्यस्त जीवन में बुजुर्गों की स्थिति का जायजा लेती है। यह प्रवासी लेखक द्वारा लिखी जाकर भी प्रवासी कहानी न होकर प्रवासी अनुभवप्रसूत कहानी है। इस कहानी का परिवेश तो विदेशी है ही सारे पात्र भी ब्रिटिश हैं। उनकी संवेदनाएँ, सभ्यता-संस्कृति, मूल्य, व्यवहार सब विदेशी हैं। जीवन और वृद्धावस्था को देखने का उनका दृष्टिकोण भी विदेशी है। बुढ़ापे ने उन्हें सिमटने पर मजबूर कर दिया है, ''जैसे जैसे बुढ़ापे की पदचाप सुनाई पड़ने लगती है, चुनने की आजादी खतम होने लगती है। रह जाती है एक संकरी गली - वह भी आगे से बंद।'' सुखी जीवन व्यतीत करने के बावजूद लिंडा, पीटर, रोज़मेरी और लॉरेंस आज एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। एक कटु सच्चाई जो आज भारत में भी जड़ जमा रही है। क्रिसमस का त्योहार है। लंदन में तीस साल में इतनी बर्फ़ पहली बार गिरी है। सब कुछ जम गया है। रिश्ते भी। कहानीकार इस कहानी के संबंध में अपने वक्तव्य में कहती हैं, ''क्रिसमस के महीने को झेलने के लिए जरूरी है कि आप जवान और तंदुरुस्त हों, आपका बड़ा सा परिवार हो या बहुत सारे दोस्त हों।'' कहानी के सारे पात्र बूढ़े और एकाकी हैं। कहानीकार का कमाल है कि इस सर्द मौसम में भी वह अजनबियों के बीच रिश्तों की गरमाहट पैदा करती है। मौत के साए को दूर हटा कर जिन्दगी को खुशहाल बनाती है। यह कहानी इस मिथक को खारिज करती है कि प्रवासी कहानियाँ मात्र गृहातुरता का राग हैं। यह दिखाती है कि अचला शर्मा की सजग, व्यापक दृष्टि सूक्ष्मता से प्रवासी देश के मूल लोगों का भी अवलोकन करती है और देशकाल के पार जाकर अपने कथ्य को प्रस्तुत करती है। इसी कारण यह कहानी विशिष्ट बन पड़ी है। अचला शर्मा ने सकारात्मक मानवीय अनुभूतियों को मुखर किया है।

अमेरिका के विषय में एक सामान्य छवि है कि यह देश और इस देश के नागरिक अत्यंत समृद्ध हैं। यहाँ भूख और बेरोजगारी नहीं है। हालाँकि आकड़े इसकी पुष्टि नहीं करते हैं। अमेरिका सदैव

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है...' अमेरिका की ऐसी छवि प्रस्तुत करता है जिसमें पहले-पहल लगता है जैसे हम भारत के ही किसी बड़े शहर में हैं। मगर अमेरिका भारत से भिन्न है यहाँ भिखमंगों को भी कई सुविधाएँ प्राप्त हैं।

अपनी सकारात्मक छवि प्रस्तुत करता है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है...' अमेरिका की ऐसी छवि प्रस्तुत करता है जिसमें पहले-पहल लगता है जैसे हम भारत के ही किसी बड़े शहर में हैं। मगर अमेरिका भारत से भिन्न है यहाँ भिखमंगों को भी कई सुविधाएँ प्राप्त हैं। यह एक कल्याणकारी राज्य है जहाँ राज्य अपने नागरिकों को कई प्रकार की सहायता देता है। भारत भी अब इसी दिशा में बढ़ रहा है। जब भी कुछ बिना मेहनत के मुफ़्त प्राप्त होता है कई आदमी उसकी कद्र करना नहीं जानते हैं इतना ही नहीं कुछ लोग इनका बेजा फ़ायदा भी उठाते हैं। सूरज क्यों निकलता है... के पीटर और जेम्स दोनों प्रमुख पात्र ऐसे ही व्यक्ति हैं। ये भीख माँग कर मस्ती करते हैं। भीख माँगने के लिए ये भारतीय भिखारियों की भाँति रिरियाते नहीं हैं शान से हाथ में तख्ती लिए खड़े होते हैं जिस पर लिखा होता है, ''होमलेस, नीड यौर हेल्प''। जबकि घर इनके पास है। कई दिन से इनके गले सूखे हैं, पानी के लिए नहीं बल्कि शराब के लिए। शराब और औरत के लिए पैसे जमा करने को ये आते-जाते लोगों के सामने हाथ फैलाते हैं। कुछ लोग गाली देते हैं कुछेक एकाध डॉलर इनके हाथ में फ़ेंक देते हैं। भीख से मिले पैसे बचाने के लिए ये शैल्टर होम में रात बिताते हैं। सूप किचेन से मुफ़्त खाना खाते हैं। गरीबों को मिलने वाले भोजन के कूपन को आधे-पौने दाम पर बेच डालते हैं। साथ-ही-साथ सरकार की आलोचना भी करते हैं।

जब मनचाही रकम जमा हो जाती है सज-धज कर एक सस्ते और घटिया क्लब पहुँच जाते हैं जहाँ इनका पाला इनके भी बाप या यूँ कहें बाप से पड़ता है। लौरा और सहरा नाचते हुए इनके जेबें साफ़ कर जाती हैं। बाद में पैसे न होने के कारण उन्हें क्लब से घसीट कर बाहर कर दिया जाता है। ''रात के तीन बजे सिक्योरिटी गार्ड कई और टुन्न, टल्ली हुए पियक्कड़ों को उन्हीं के साथ सटा कर लिटा गया। सारी रात वे दोनों क्लब के बाहर कोने में सोए रहे...'' सुबह जब सूरज निकलता है तो सूरज की किरणें इनकी आँखों में चुभती हैं। सिक्योरिटी गार्ड इन्हें ठोकर मार कर उठाता है। भला ऐसे लोगों को सुबह होना, नया दिन निकलना क्यों अच्छा लगेगा। इसी लिए कहानी का शीर्षक है 'सूरज क्यों निकलता है...'।

यह निठल्लापन पीटर और जेम्स को विरासत में मिला है। इनकी माँ टेरी भी ऐसी ही थी। वह बस एक ही काम करती थी, बच्चे पैदा करना। उसके मन में अपने बच्चों के लिए चिंता, माया-ममता कुछ नहीं है। वह सिगरेट, शराब और पुरुषों के साथ अपना सारा समय काटती है। उसके माता पिता उसके बच्चे पालते हैं। असल में बच्चे उनके लिए भी आमदनी का जरिया हैं। अमेरिका में गरीबों के बच्चों को अट्ठारह साल की उम्र तक पालन-पोषण और शिक्षा के लिए सरकार खर्च वहन करती है। टेरी ने ग्यारह बच्चे पैदा किए और इससे परिवार को खूब आमदनी होती रही। नतीजन टेरी की बेटियाँ उसी के नक्शे-कदम पर चल पड़ीं, बेटों ने ड्रग्स, जेल, भिखमंगी का रास्ता अपनाया। क्यों करते हैं लोग ऐसा? कैसे ऐसे निकम्मे, आलसी

और ढीठ हो जाते हैं? पूरी कहानी का एक वाक्य काफ़ी हद तक इसका उत्तर देता है। टेरी की जीवन शैली पर किए गए अपनी माँ के प्रश्न के उत्तर में वह हँस कर कहती है, ''मैं काम क्यों करूँ? हमारे बुजुर्गों ने वर्षों इन लोगों की गुलामी की है, अब सरकार का फ़र्ज बनता है कि हमारा ध्यान रखे।'' यही एक पंक्ति स्पष्ट करती है कि ये लोग अश्वेत अमेरिकन हैं। अपने लोगों पर हुए क्रूर अत्याचार का बदला लेने का इनका अपना तरीका है। प्रतिकार व्यक्ति को अंधा कर देता है। वह यह भी भूल जाता है कि बदले की इस भावना से उसका अपना जीवन भी नष्ट हो रहा है। इस एक पंक्ति के आते ही पाठक का नजरिया इनके प्रति बदल जाता है। उसके मन में जहाँ एक ओर इनके लिए सहानुभूति उत्पन्न होती है वहीं तमाम प्रश्न भी उसके मन में पैदा होते हैं। अमेरिका में अमेरिकी लोगों के जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत करती यह एक संवेदनशील प्रवासी हिन्दी कहानी है।

'पापा की सजा', 'मारिया', 'चौथी ऋतु', तथा 'सूरज क्यों निकलता है...' ऐसी कहानियाँ हैं जो एक बात को पुनः स्थापित करती हैं कि मनुष्य किसी भी देश, किसी भी संस्कृति का हो पर मानवीय संवेदना एक-सी होती है। प्रेम-प्यार, हँसी-रुदन, दुःख-सुख सब स्थानों पर मनुष्य को एक ही तरह से व्यापता है। इसके साथ ही ये कहानियाँ हिन्दी पाठकों को एक अनजानी दुनिया से परिचित कराती हैं। नए-नए चरित्रों तथा पात्रों से मिलाती हैं। इसलिए भी इनका हिन्दी साहित्य में स्वागत होना चाहिए। इन पर और चर्चा होनी चाहिए।

●

संदर्भः

जोशी, हिमांशु, प्रतिनिधि आप्रवासी हिन्दी कहानियाँ, साहित्य अकादमी, दिल्ली, २००९, पृष्ठ संख्या ११, एचटीटीपी/माईग्रेशनइंफ़ोर्मेशन.ओर्ग/इंडेक्स, 'फ़ंदा', अभिव्यक्तिडॉटकॉम ४ जनवरी २००९, अभिशप्त', तेजेंद्र शर्मा, मिट्टी की सुगंध (कहानी संग्रह) सं. उषा राजे सक्सेना, राधाकृष्ण प्र. प्रा. लि., न. दि. १९९९ पृष्ठ संख्या १७, 'मेहरचन्द की दुआ' शर्मा, अचला, कथादेश, सं. हरिनारायण, दिसम्बर २०१०, शन्नो', उषा राजे सक्सेना, कथाक्रम, त्रैमासिक, लखनऊ, जनवरी-मार्च २००३ पृष्ठ संख्या ४९, वही, एन. आर. आई.' अर्चना पैन्यूली, आजकल' २००७, वही, वही, ज़ौकी, मुशर्रफ़ आलम, 'हंस', अक्टूबर २००७, शर्मा, तेजेंद्र, 'बेघर आँखें' (कहानी संग्रह), अरु पब्लिकेशन प्रा. लि. न, दि. पृष्ठ संख्या १३०, वही, पृष्ठ संख्या १३१, वही, पृष्ठ संख्या १३६, वही, पृष्ठ संख्या १३१-३२, वही, पृष्ठ संख्या १३५, वही, पृष्ठ संख्या १३६, वही, पृष्ठ संख्या १३७, वही , ज़ुबेरी, ज़किया, 'मारिया', अभिव्यक्तिडॉटकॉम, फ़रवरी २००८, वही, वही, वही, वही, वही, वही, वही, वही, वही, वही, वही, वही

समुद्र पार रचना संसार, 'चौथी ऋतु', शर्मा, अचला, सं. हरि भटनागर तथा तेजेन्द्र शर्मा, मार्च-अप्रेल २००८ पृष्ठ सं. १७५, वही, पृष्ठ सं. १७६

'सूरज क्यों निकलता है...', अभिव्यक्तिडॉटकॉम, १५ नवम्बर २०१०, वही, वही।

●

पुस्तक समीक्षा

राही मासूम रजा कृतित्व एवं उपलब्धियाँ (डॉ. एम. फ़ीरोज़ ख़ान)

समीक्षा : डॉ. दया दीक्षित (भारत)

हिन्दोस्तानियत का सफर

राही मासूम रजा कृतित्व एवं उपलब्धियाँ युवा साहित्यकार डॉ. एम. फीरोज अहमद द्वारा संपादित कृति इस अर्थ में महत्त्व की कही जा सकती है कि इसमें राही जी के व्यक्तित्व के लगभग सभी विशिष्ट पहलू आ जाते हैं। संपादक ने अपने संपादकीय के माध्यम से राही और उनसे संबंधित कारकों का उल्लेख किया है।

यह सच है राही गंगा जमुनी संस्कृति के पर्याय हैं। यह भी सच है कि उन्हें फिल्म पटकथा लेखक के रूप में अधिक जाना गया, मगर यह भी सच है कि साहित्य के पठन पाठन से कहीं ज्यादा व्यापक फिल्मों को देखने वाला वर्ग है, यही कारण रहा है कि आमतौर पर राही को पटकथा लेखक के रूप में अधिक पहचाना गया।

पहचाना तो उन्हें विवादों में घिरने के लिए भी गया। मगर यह विवाद कुछ कमजर्फ टाइप के नौसिखियाओं तथा कुंठित लोगों के दिमागी फितूर से ज्यादा महत्त्व नहीं रख सके। अगर दमदार कृतित्व है तो विवाद स्वत: खत्म हो जाते हैं। इस नजरिये से प्रस्तुत कृति रजा के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रामाणिक साक्ष्य का काम करती है। राजनीतिक तथा हिन्दी सिनेमा विषयक दृष्टिकोण दृष्टव्य हैं। राही 'वोट चबाने' वाले लोकतंत्र के संविधान में तब्दीली के तलबगार हैं। वे राजनेताओं की उस दुरभि-संधि से बेचैन हैं जो 'हिन्दुस्तान को भीतर से जाति पर बाँटने' का काम करती है। वे नेहरू को उनके भविष्यवाद की सबसे बड़ी ताकत के साथ स्वीकार करते हैं। उनके इतिहास संबंधी विचार बेहद उल्लेख हैं।

कृति में मासूम रज़ा पर महत्त्वपूर्ण आलेख और संस्मरण एवं साक्षात्कार हैं। वरिष्ठ रचनाकार हसन जमाल, वरिष्ठ समीक्षक शिवकुमार मिश्र तथा

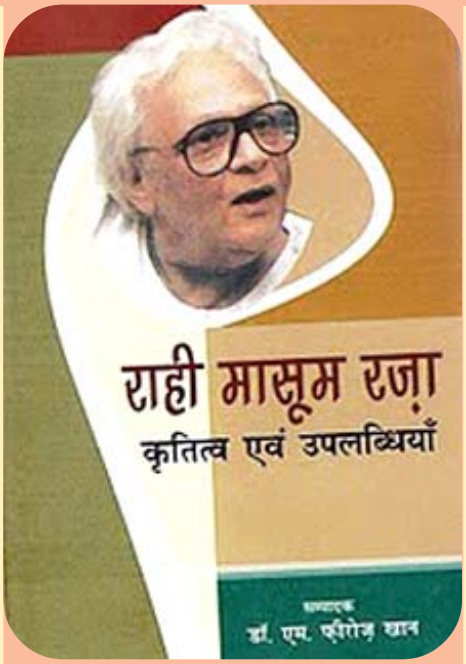

डॉ. एम. फीरोज खान-
राही मासूम रजा कृतित्व और उपलब्धियां,
अर्पिता प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2010, मूल्य 400

मूलचंद सोनकर का वैचारिक लेखन राही के जीवन तथा उनके कृतित्व का गंभीर बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करता है। मूलचंद सोनकर ने श्लीलता और अश्लीलता पर जिस तथ्यपरक सामग्री को प्रस्तुत किया है, वह मुद्दे की तह का स्पर्श करती है।

इसी पुस्तक में राही मासूम रजा का एक आलेख है- 'शाम से पहले डूब न जाए सूरज'। यह आलेख राही की उस विचारधारा पर केन्द्रित है, जिसके अनुसार राजनीतिक महान् नीति नियामकों की साजिश का ही कमाल रहा कि 'वास्तविक इतिहास' को छिपाए रक्खा गया तथा 'अंग्रेजी-इतिहास' के झूठ को असल इतिहास बताया गया। असलियत का इतिहास लिखा ऑर्गेनाइजर के संपादक मलकानी ने-''जैसा कि तुर्की यमानी के उतबी ने उद्धत किया है, महसूद के इतिहासकार अल बरूनी के अनुसार, सोमनाथ में शिवलिंग को छोड़कर अन्य देव मूतियाँ नहीं थी, महमूद ने अपने सिक्कों पर लक्ष्मी की प्रतिमा भी अंकित करायी...महमूद के पुरखे शैव थे, इसलिए उनके तथा उनके उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर शिव का नंदी अंकित हुआ।'' ....किसी सेकुलर हिस्टोरियन ने क्या अल बरूनी को पढ़ा ही नहीं कि हमारी किताबें महमूद गजनवी के बारे में यह झूठ क्यों बोलती रही और देश के आजाद होने के बाद भी उन्हें यह 'अंग्रेजी झूठ' बोलने की इजाजत क्यों दी गयी? कि डॉ0 नुरूल हसन ने, जो खुद एक इतिहासकार हैं, शिक्षा मंत्री होने के बाद इतिहास की जो नयी किताबें लिखवाई, उसमें यह सच क्यां नहीं आया? कि हमारे प्रो0 हबीब और डा0 ताराचंद क्या सोचकर चुप रहे?.....यह परेशान करने वाला सवाल है।'' (सम्पादक- डा. एम. फीरोज अहमद राही मासूम रज़ा कृतित्व एवं उपलब्धियाँ, पृ. 32)

यह एक साजिश है हिन्दू मुस्लिम एक्य और सद्भाव को खत्म करने की-''हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलमान महमूद गजनवी को बुत-शिकन ही मानते रहें, ताकि एकता का वातावरण न बनने पाये और हिन्दू बहुमत से सहमे हुए मुसलमान कांग्रेस को वोट देते रहें? यदि ऐसा नहीं तो फिर महमूद के हौवे को खड़ा रखने की क्या जरूरत थी?

मलकानी की किताब बगल में दबाये सोमनाथ चलिए। मन्दिर के पुजारी जानते हैं कि शिवलिंग के नीचे बड़ा खजाना है। यह बात महमूद को भी मालूम थी। इसलिए जब पुजारी यह कह रहे थे, कि करोड़-दो करोड़ ले लो और 'लिंग' को उनको

हाथ न लगाओं तो महमूद यह सोच रहा था कि 'लिंग' के नीचे जो खजाना है, वह इस रिश्वत से यकीनन बड़ा होगा। वह लिंग केवल पूजने की चीज नहीं था। वह एक खजाने का दरवाजा भी था। महमूद ने वह 'लिंग नहीं हटाया था, वह दरवाजा खोला था और दरवाजा खोलना पाप नहीं है। सोमनाथ के शिवलिंग पर याद आया, दो-ढाई बरस पहले इनकम टैक्स वालों ने एक फिल्म निर्माता के घर छापा मारा। वे निर्माता शिवभक्त थे। उनके घर में एक शिवालय था। इनकम टैक्स वालों ने शिवमूर्ति सरकायी, तो पता चला कि उसके नीचे बड़ा माल है। तो क्या ओक साहब इनकम टैक्स वालों को महमूद गजनवी की संतान मान लेने को तैयार है।' (वही पृष्ठ 32-33)

राही अंग्रेजों की चाल पर चलने वाले राजनीतिक दल पर बेबाकी से उँगली उठाते हुए उसके द्वारा धर्म के विकृत दोहन करने का अक्षम्य अपराध मानते हैं-राजनीति का आधार धर्म नहीं है। राजनीति धर्म को इस्तेमाल करती है। यह बात अंग्रेजों के फायदे की थी कि हिन्दू-मुसलमान लड़ते रहें तो इतिहासकारों ने नमक का हक अदा किया। यह बात उस कांग्रेसी शासन के फायदे की भी थी, जो रोजी-रोटी की समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हो रहा था। इसलिए इतिहासकार अकबर की लगान वसूली की पॉलिसी पर थीसिस लिखते रहे और उन्होंने यह बतलाने का कष्ट नहीं उठाया कि औरंगजेब के विश्रामगृह के दरवाजे पर मुसलमान ने कभी पहरा नहीं दिया। जब वह सोता था, तो हिन्दुओं के सिवा किसी पर भरोसा नहीं होता था। यह बात मुझे अलीगढ़ विश्वविद्यालय इतिहास विभाग के डॉ0 अतहर अली ने बतलायी थी। ऐसी ही न जाने कितनी बातें इतिहास की समय-चारी किताबों में पड़ी-पड़ी उस आदमी की राह देख रही होंगी, जो उन्हें ऊँची आवाज में पढ़ने की हिम्मत करेगा।

राही प्रत्येक प्रकार की सांप्रदायिकता से दूर रहे। बल्कि कहना चाहिए कि विरोध करते रहे चाहे वह हिन्दू साम्प्रदायिकता हो या मुस्लिम। ''मैं जमाते-इस्लामी और जनसंघ दोनों का विरोधी हूँ। ये दोनों सांप्रदायिक हैं और संप्रदायवाद धर्म को 'एक्सप्लायट' करता है, इसका गलत लाभ उठाता है।'' (वही पृष्ठ 99)।

किसी भी व्यक्ति के जीवन के अंतरंग पहलू या बहुरंगी शेड्स देखने समझने की युक्ति के रूप में सर्वाधिकार कारगर युक्ति है कि उसके अभिन्न आत्मीयजनों से बातचीत की जाए। राही जी को जानने समझने के लिए उनकी बहिन तथा पत्नी का साक्षात्कार इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

राही जी पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना शुरू कर दिया। इस कारण हिन्दी उर्दू वालों में वे पर्याप्त रूप से विवादित रहे। इस बावत राही जी की बहिन सुरैया का वक्तव्य-''उनका यह सोचना था कि अगर देवनागरी में लिखा जाए तो पूरा हिन्दुस्तान आसानी से समझ पायेगा। वैसे भी उर्दू केवल उर्दू जानने वाले ही समझ पायेंगे। इसलिए वे सोचने लगे थे कि उर्दू की स्क्रिप्ट भी देवनागरी में चलनी चाहिए। इसके चलते कई लोग उनके खिलाफ भी हो गये थे। वे मानने लगे कि राही उर्दू को खत्म करना चाहते हैं असल में वे चाहते थे ....सब समझेंगे कि आखिर उर्दू की चीजों में क्या है। हालांकि राही जी को उर्दू से बहुत मुहब्बत थी किन्तु उनके इसी कदम से उन्हें बहुत-सी वे चीजें नहीं मिल पाई जिनके वे हकदार थे।'' (वही पृ. 115)।

दरअसल राही अपनी बात केवल एक संप्रदाय विशेष में नहीं बल्कि संपूर्ण भारत से कहना चाहते थे। वे और कुछ बाद में थे, सबसे पहले सच्चे भारतीय/हिन्दू थे। उनकी हर साँस में भारत था। उन्हीं के शब्दों में वे दस से नहीं दस हजार...से बात करना चाहते थे। उन्हें भारत की संस्कृति/सभ्यता से अटूट लगाव था। ''इंटरव्यू के बीच में उस पत्रकार ने सवाल किया कि मुसलमान होकर आप ऐसा ये सब कैसे लिख पा रहे हैं...और मैंने देखा कि सवाल सुनकर मासूम रो पड़े। और उन्होंने कहा कि आप ये सवाल मुझसे क्यों करते हैं। मैं हिन्दुस्तानी पहले हूँ, मुसलमान बाद में हूँ, और ये जो महाभारत है ये हर हिन्दुस्तानी का खजाना है। और हर हिन्दुस्तानी का चाहे वे किसी मजहब का हो इस पर हक है।'' (वही पृष्ठ 134)।

न जाने लोग उन इस तरह के सवाल क्यों दागते रहे 'जबकि जितना शोध-स्वाध्याय उन्होंने 'महाभारत' के लिए किया था, वह किसी शंकराचार्य से कम नहीं था। इसमें कोई शक नहीं कि राही की पत्नी सही अर्थों में जीवनसंगिनी थी। गर्दिशी के दिनों में उस महिला ने कैसे गुजर की होगी, जिसकी परवरिश शाही खानदान में हुई हो। एक उफ् या आह तक नहीं। सदैव यही संतोष और सुख कि खाविंद राही मासूम रजा ने हर तरह से प्रसन्न संतुष्ट रक्खा कि उनकी राही के साथ गुजर बसर सातों सुखों में हुई।

राही साहब ने ही पत्नी नैयर रज़ा की सहनशीलता, शीलनता नेकख़्यालातों के बारे में साक्षात्कार में बताया था ''मुझे वह दिन आज भी अच्छी तरह याद है जब नैयर फैमिली अस्पताल में थीं। चार दिन के बाद अस्पताल का बिल अदा करके मुझे नैयर और मरियम को वहाँ से लाना था। सात-साढ़े सात सौ का बिल था और मेरे पास सौ-सवा सौ रुपये थे।'' ...घर का सारा समान लेकर चले गये और घर नंगा रह गया। मेरे पास दो कुर्सियाँ भी नहीं थी। हमने कमरे में दो गद्दे डाल दिये और वहीं दो गद्दों वाला वीरान कमरा बंबई में हमारा पहला ड्राइंगरूप बना.....उन दिनों में नैयर से शर्माने लगा था। मैं सोचता कि यह क्या मुहब्बत हुई कैसे जिंदगी से निकाल कर कैसी जिंदगी में ले आया। मैं उस औरत को जिसे मैंने अपना प्यार दे रक्खा है....अपना तमाम प्यार। मगर नैयर ने मुझे यह कभी महसूस नहीं होने दिया कि वह निम्न मध्यमवर्गीय जिंदगी को झेल नहीं पा रही है।'' (वही पृष्ठ 138-139)।

उपर्युक्त विवरण पति/पत्नी के प्रेम को तो दर्शाता ही है साथ ही यह भी जाहिर होता है कि अपनी जीवनयात्रा में तथा 'अपनों' की 'बेगानों' जैसी कितनी ही तंगदिल गलियों से मासूम को गुजरना पड़ा। यह संघर्ष राही को कई सतहों/स्तरों पर करना पड़ा। हालाँकि उन्होंने दर्जनों फिल्मों को पटकथाएँ/कथाएँ लिखीं मगर फिल्मवालों के रवैये ने उन्हें वैसा ही आहत किया, जैसा कि प्रेमचंद तथा अमृलाल नागर को किया था। फिर भी फिल्मों के लिए लिखते रहे और 'उन हालात' में भी 'अपने लिए' अपनी तरह से (अपने रचनाकार के लिए) कुछ स्पेस बचा ही लेते थे।

इसी तरह फिल्मकारों की असामाजिक सामाजिकता से वे कभी सहमत न हो सके। नगर वधुओं की समस्या पर बनी अनेक फिल्मों से वे असंतुष्ट थे। ''अभी तक इस विषय पर जितनी

फिल्में बनी हैं, उनसे मैं नाखुश हूँ, क्योंकि ईमानदारी से एक भी फिल्म नहीं बन पायी और आज के हालात में यह मुमकिन भी नजर नहीं आती। कूल्हे और छाती मटकाना और तरह-तरह की पोशाकें पहनवाकर तवायक के स्वरूप को प्रस्तुत करना औरत के सामने समाधान पेश नहीं करता, अपितु परिस्थितियों के लड़ने के बजाय उस ओर जाने का प्रेरित करता है, जो सरासर गलत है।....कला के क्षेत्र में माँगे-ताँगे के उजाले से काम नहीं चलता। दीप से दीप जलाने की बात और है। परन्तु यह नहीं हो सकता कि हम किसी और कलाकार का दिया उठाकर अपने घर में रख लें। कला के आसमान पर हर सितारे की रोशनी का रंग अलग होता है और लोग उस रोशनी को पहचानते है।'' (वही पृष्ठ 149)।

एक लंबा अर्सा फिल्मी दुनिया में गुजारने की वजह से वे फिल्म कला एवं संस्कृति को उसके विविध आयामों में जानते समझते थे।''इस संदर्भ में उनकी पुस्तक 'सिनेमा और संस्कृति' का उल्लेख आवश्यक है। इसके पहले खण्ड में सिनेमा संबंधी विचार हैं जिनमें सिनेमा, साहित्य और समाज के अंतसंबंधों पर प्रकाश डालते हुए वह सिनेमा की करिश्माई ताकत से बुद्धिजीवी वर्ग की अनभिज्ञता पर उपेक्षा पर क्षोभ व्यक्त करते हैं। राही पूरी गंभीरता से सिनेमा को विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम का अंग बनाना चाहते थे। इसके साथ ही वह यह मानते हुए भी कि सिनेमा निर्माता, निर्देशक, लेखक, अभिनेता, टेकनीशियन, वितरक एवं अन्यान्य अगणित घटकों का एक 'कोरस' अथवा एक सामूहकि प्रयास होता है फिर भी फिल्म लेखक की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। 'आजाद हिन्दुस्तान की गुलाम फिल्म' शीर्षक लेख में वह कहते हैं-''महाजन डिस्ट्रीब्यूटर, प्रोड्यूसर और स्टार ने कलम का टेंटुवा दबा रखा है।'' राही मासूम रजा की एक और उल्लेखनीय भूमिका टेलीविजन धारावाहिक लेखक की है। ऊपरी तौर पर देखने पर फिल्म और टेलीविजन एक ही दृश्य माध्यम की दो धारायें दिखाई देती हैं किन्तु दोनों का अपना अलग-अलग व्याकरण और शास्त्र होने के साथ ही अलग इतिहास, भूगोल और समाज शास्त्र भी है। दोनों एक-दूसरे के न तो विकल्प है और न ही विरोधी। 'महाभारत' और 'नीम का पेड़' धारावाहिक भारतीय टेलीविजन की अविस्मरणीय कलात्मक प्रस्तुतियाँ हैं। 'महाभारत' न केवल पुराणकथा और न ही केवल कास्ट्यूम ड्रामा है, साथ ही हिन्दी भाषा की दृष्टि से वह मात्र 'पिताश्री', 'माताश्री', तथा 'भ्राताश्री' मार्का कथित शुद्ध हिन्दी है और न ही यह एक 'मुसलमान लेखक' द्वारा हिन्दू एपिक' की पुनर्प्रस्तुति है। राही 'महाभारत' की विशद एवं वैविध्यपूर्ण कथा को 'समय' नामक सूत्रधार के माध्यम से आगे बढ़ाते हैं।

उपुर्यक्त तथ्यों के प्रकाश में राही मासूम रजा के 'रचनाकार' और 'व्यक्ति' की जो विशिष्ट छवि / पहचान बनती है, वह निस्संदेह उन्हें सर्वरूपेण एक सच्चा भारतीय नागरिक तथा सच्चा भारतीय मसिजीवी सिद्ध करती है। आगत पीढ़ियों के लिए राही मासूम रजा का कृतित्व एवं उपब्धियाँ प्रकाश स्तंभ की भाँति प्रेरणा रश्मियाँ प्रवाहित करने में पूर्णतया सक्षम है।

●

पुस्तक समीक्षा

अनेक रंग (दीप्ति अचला कुमार)

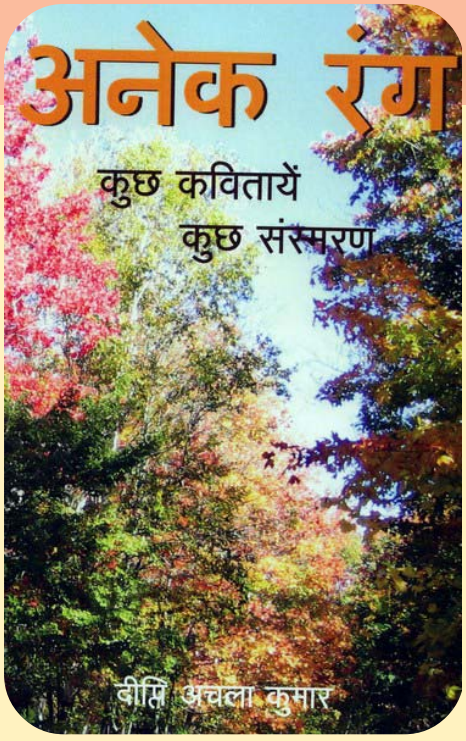

समीक्षा : श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी (कैनेडा)

प्यार को नया रूप तथा नई परिभाषा देने की पहल

अनेक रंग
(कुछ कविताएँ कुछ संस्मारण)
दीप्ती अचला कुमार,
अशोक कुमार प्रकाशन,
मूल्य : 10 कैनेडियन डॉलर

दीप्ति अचला कुमार की कविताओं तथा संस्मरणों का यह प्रथम संकलन है जिसे अशोक कुमार प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। कुल मिलाकर ३८ कविताएँ और ३ संस्मरण हैं जो ११४ पृष्ठों में समाहित हैं। 'अनेक रंग' उसका शीर्षक जहाँ एक और रचनाकार की अनुभूतियों, सम्वेदनाओं और विषयगत विभिन्नता की ओर संकेत करता है वहीं दूसरी ओर 'अनेक' शब्द अध्यातम के क्षेत्र में परम ब्रह्म के अनेकानेक गुणों - क्रियाओं का परिचायक भी है। इस शीर्षक को पढ़कर मुझे बरबस यशस्वी कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य संकलन - 'फूल नहीं बोलते हैं' की याद आती है। मुख पृष्ठ में पतझड़ के पूर्व का प्राकृतिक दृश्य है जिसमें लाल, पीले और गुलाबी बिखरे रंगों के साथ सदाबहार वृक्षों की

हरीतिमा भी परिलक्षित होती है जो पुरातनता के अंत और नवीनता के आगमन की ओर इशारा करती है ।

दीप्ति साहित्य के प्रति अपनी रुझान का श्री अपने बाल्यकालीन जीवन की साहित्यिक गतिविधियों से सराबोर वातावरण को देने से नहीं चुकती (भूमिका प. १)। इसमें कोई संदेह नहीं कि दीप्ति का साहित्य के प्रति बुनियादी अनुराग, उनकी अध्यनशीलता और साहित्यिक संगती का सुखद परिणाम है उनका साहित्य सृजन । यद्यपि 'स्वांत सुखी' की प्रबल भावना ही उनके लेखन का आधारबिंदु है लेकिन अपने पति के प्रोत्साहन तथा प्रेरणा को वे नज़रन्दाज़ भी नहीं करना चाहती जैसा कि उन्होंने किताब की भूमिका में स्वीकारा है ।

उन्होंने एक नितांत गम्भीर सवाल उठाया है - 'क्यों लिखूँ, किसके लिए ? यह प्रश्न मन को बींधता है' (प४२) । साहित्य जगत में एक लम्बे अरसे से यह विवाद चला आ रहा है कि सृजन स्वकेंद्रित, जगकेंद्रित अथवा कला केन्द्रित हो और दीप्ति किसी बहस - मुबाहिसे में उलझने के बजाय सभी विचारधाराओं का उल्लेख करती अवश्य हैं लेकिन किसी एक पक्ष का समर्थन भी नहीं ।

'पीला पत्ता ' प्रकृति के साथ उनका लगाव जो है उसका परिचायक है । सम्भवता: पीला पत्ता ज्ञान, उम्र की परिपक्वता का प्रतीक है जिसने काल की क्रूरता - आंधी , ओले और गर्मी को झेला है तब कहीं इस स्थिति तक पहुंचा है इसका अहसास रचनाकार को है परिणामत: उसके लिए उनके कोमल तथा सम्वेदनशील मन में सहानुभूति भी है -'रुको साथी, हटा लो हाथ को, न तोड़ो छोड़ दो पीले पड़े इस पात को' । यह अनुभावों का कर्म बरबस मुझे विख्यात पुर्तगाली कवि - अल्बर्टो की कविता 'झील' की इन पंक्तियों की याद दिलाती है -'मत छुओ इस झील को, कंकड़ी मारो नहीं, पंक्तियाँ दरो नहीं'। प्रेम साहित्यकारों का अनादिकाल से प्रिय विषय रहा है किन्तु दीप्ति का नज़रिया थोड़ा औरों अलग है और ऐसा लगता है कि उन्होंने नारी सुलभ अस्मिता को सुरक्षित रखने का भरसक प्रयास क्या है । प्रेम में स्वाभिमान अथवा आत्मसम्मान के उत्सर्ग की पक्षधर नहीं हैं । वे अपने तर्कों के आग्नेयास्त्रों का प्रयोग कुछ इस तरह करती हैं -'टक्कर घुटने झुका सर प्रेम का जो दान माँगे, हो किसी का प्यार लेकिन, प्यार मेरा वह नहीं है । मेरा प्यार 'एकतरफा प्यार से यह मन सहज भरता नहीं है' । (जिंदगी का साथ) अथवा 'आज मन को रोष तुझ पर आ रहा है'(प्रश्न)। प्यार को नया रूप तथा नई परिभाषा देने की उनकी यह पहल परम सार्थक है ।

अपनी जन्म भूमि भारत से जुड़ी मधुर- मदिर स्मृतियाँ उनके प्रवासी जीवन का अपरिहार्य अंग हैं जो उनकी कविताओं 'यादें', 'साथी' 'याद इलाहाबाद आया' और 'दे अपना' आदि में झिलमिलाती हैं । अतीत के गुरूत्वाकर्षणीय स्मृतियों को समेटे जीवन की यथार्थ पगडंडी में अग्रसर होने की पुरजोर कोशिश कवयित्री के आत्म विश्वास, साहस तथा आशावादी प्रवृति का परिचय देती है, गौरतलब है ये पंक्तियाँ -'अभी गतिशील पग मेरे, उमंगों से भरा है मन' (सहज बोध), 'समय यह भी भला सा है' (समय यह भी भला सा है), 'आशा का रथ दौड़े, जीवन की राहों पर'(आत्म विश्वास) अथवा 'ये चरण उत्साह से बढ़ते रहेंगे' (काफिले)। नि:संदेह प्रवासी जीवन की बात तो उसी से की जा सकती है जिसका वैसा अनुभव हो- 'लोहे का स्वाद लोहार से नहीं, उस घोड़े से पूछो जिसके मुँह में लगाम है' (धूमिल) ।

दीप्ति ने जीवन के नितांत अनछुए प्रसंगों को सलीके से परोसने की पेशकश की है वह प्रभावशाली भी है और सहज भी । उदाहरण के लिए इनका उल्लेख किया जा सकता है -'लो अब बात तुम्हारी मानी'(सम्बन्ध), 'क्यों मैं मन की बात नहीं कहती' (प्रतीक्षा), अथवा 'बिसराई कितनी ही बातें, बात तुम्हारी याद रखी है' (बात तुम्हारी) सम्भवता: दीप्ति की आशा और मन सम्बन्धित अनुभूतियाँ सरोजनी नायडू के 'टूटे पंख' (दी ब्रोकेन विंग) के समीप है ।

पारिवारिक जीवन के विभिन्न पक्षों का सशक्त चित्रण भावों को नया आयाम प्रदान करता है और इस सन्दर्भ में इन कविताओं का उल्लेख सही होगा -'छोटे बड़े सुख' 'अन्तराल पीढ़ियों का' और 'शुभ कामनाएं'। 'साथी' कविता में लोहे की कड़ाही , सरोता, सन्दसी और पतीली आदि का विवरण इतिहास बोध, स्वत्व बोध और जीवन बोध के सन्दर्भ में पढ़ना उचित होगा । वैसे दीप्ति के जीवन का कोई भी ऐसा प्रसंग नहीं है जो उनकी कविता में अस्पर्शित रहा हो ।

कविताएँ मूलत: आत्मकेंद्रित हैं इसलिए उनमें घनत्व तो है लेकिन विस्तार का जगमगाता वैभव नहीं । साथ ही यह भी सच है कि इन कविताओं में समसामयिक सरोकार - दलित , नारी विमर्श , आतंकवाद और वैश्वीकरण आदि से सम्बंधित विषयों की तलाश भी बेईमानी होगी । यद्यपि भावाभिव्यक्ति निजता से बोझिल है फिर भी परोक्ष रूप से रचनाकार की सम्वेदनशीलता कमोवेश दूसरे ऐसे लोगों के मनोभावों का प्रतिनिधित्व तो करती ही है जो उस तरह की स्थिति से गुज़रे हैं । संभवत: दीप्ति का आत्मानुभव वृहद सत्य का अनुभव बनने का उपक्रम करता सा लगता है । इसमें शक नहीं कि दीप्ति के आलोच्य काव्य संग्रह में महादेवी वर्मा की करुणा की अनुगूँजें हैं -'मेरे आँसू' अथवा 'सिमटने के दिन'। कतिपय रचनाओं में वैचारिक तथा नैतिक संदेश है, बानगी के बतौर इन्हें पढ़ें -'कुछ देकर ही हम कुछ पाते' सम्बन्धों का सहज नियम यह(सम्बन्ध), 'यदि है कुछ पहचान बनानी, समझो सुनो रोज़ की भाषा' (मेरे आँसू) ।

दीप्ति अपनी भाषा और विषय सम्बन्धित सीमाओं के विषय में पूर्णत: सचेत हैं फलत: उनकी नम्रता इन कविताओं में छलकती है -'मेरी सीमा' तथा मेरे काव्य का इतिहास'। कवयित्री ने सरल शब्दों के साथ ही साथ नये प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग किया है, जिनमें प्रभावोत्पादकता, गीतात्मकता एवम जीवंतता है जैसे-'गुमसुम सूरज, हवा अनमनी, ठिठकी रहें, धुप गुनगुनी, देशज शब्द-थककर पसरी, अल्स दोपहरी'(दिन बहुतेरे) और सार्थक मानवीयकरण -'आवारा मेघों की टोली', 'हाँफ रही जलती सडकों पर', 'मेरा मन उदास हो जाता' या 'कागज़ पर कागज़ की भाषा, नपे तुले रख पाँव उतरती' (मन की बात)। अलंकारों का प्रयोग नैसर्गिक है इसमें किसी प्रकार की खींचातानी नहीं । इन दो लाइनों को यदि अलग से रखकर देखा जाय तो एक निहायत उम्दा शेर बनता है ।-

'न इक साँस बाकी बची जिंदगी की'
मिली जब हमें साँस लेने की 'फुर्सत'

दीप्ति ने उर्दू के शब्दों का भी बखूबी इस्तेमाल

किया है किन्तु वे थोपे या अलग से चिपकाए नहीं लगते बल्कि भावों के प्रवाह को गतिमान करते हैं । दीप्ति के तीन संस्मरण इस संकलन में हैं–'मेरा न्यायधीश','एक याद' और 'सफर और सहारे' और ये तीनों स्कूल से जुड़े अध्यापकीय अनुभव हैं । उन्होंने स्कूल के सामान्य तथा नितांत दैनिक अनुभवों को आकर्षक तथा मार्मिक बना दिया है, संस्मरणों को पढ़कर मालूम होता है । प्रेक्षण की गहनता अनुभूति को अधिक प्रभावशाली बनाती है और जब अभिव्यक्ति में सत्यता हो तो संस्मरण अद्वितीय बन जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं

दीर्घकालीन अनुभवों के आधार पर शिक्षक अथवा शिक्षिका को छात्र – छात्राओं के व्यवहार और मानसिक स्थितियों की दुरुस्त पकड़ हो जाती है इसका सजीव उदाहरण है संस्मरणों के प्रमुख पात्रों – डेविड, पाल, और जोर्डन से जुड़ी घटनाएँ । शिक्षिका का ममतापूर्ण व्यवहार उद्दंड डेविड के जीवन में सुधारात्मक परिवर्तन लाता है । लेकिन जब आगामी कक्षा में शिक्षिका द्वारा उसे पढ़ाने का दिया गया आश्वासन तथा विश्वास टूटता है तब बालक का जीवन पूर्णत: बिखर जाता और शिक्षिका का मन भी 'अपराध बोध' से भर जाता है । पाल (एक याद) प्रथम कक्षा का छात्र है । परीक्षा में प्रश्न पत्र पढ़कर विकल हो जाता है और पेट दर्द का बहाना बनाता है जिसे मॉम (टीचर) समझती है । उसे पुचकार के समीप बैठाती है । पाल मॉम के आंचल तथा बांह का सहारा पाकर अपना प्रश्नपत्र किसी तरह पूरा करता है और घर जाते समय चाकलेट चिप्स कुकी का टुकड़ा आहिस्ते से मॉम की मुठी दबा अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है । पाल के भोलेपन एवमं शिष्ट व्यवहार से प्रभावित हो मॉम उसके 'अच्छे इंसान' बनने की भविष्यवाणी करती है । जोर्डन (सफर और सहारे) औसतन छात्र हैं । उसके पितामह मिस्टर स्मिथ स्कूल के समारोहों में अक्सर सम्मिलित होते हैं । अपने एक मात्र पुत्र ग्लेन के दुर्घटना में निधन से चिंतित हो उठते हैं । जोर्डन के पिता के फ्यूनरल में स्कूल स्टाफ के सभी लोग सम्मिलित होते हैं । जोर्डन तथा उसका छोटा भाई केविन अपने पिता की मृत्यु से अप्रभावित खेलने में व्यस्त रहते हैं । मिस्टर स्मिथ केविन की ऊँगली थामे भारी कदमों से कफ़न की ओर बढ़ते हैं । बच्चों को पितामह का और पितामह को बच्चों का सहारा है, ऐसा स्टाफ के सदस्य सोचते हैं ।

बच्चों का शिशु सुलभ व्यवहार यथापूर्ण और मार्मिक है । दीप्ति के संस्मरण उनके अनुभवों का दस्तावेज़ है । घटनाओं के वर्णन में चित्रोपमता है । उन्होंने बच्चों की गतिविधियों को बहुत ही बारीकी से देखा और समझा है तभी उनके विवरण अधिक वास्तविक तथा हृदयस्पर्शी हैं । संस्मरण साहित्य की कठोर ही नहीं एक गम्भीर संवेदनशील विधा है, जिसमें सच्चाई एवमं संतुलन अपेक्षित है और दीप्ति के संस्मरण में ये गुण झलकते हैं । यही नहीं दीप्ति ने आदर्श और यथार्थ के सहज समन्यव , मानवीय सम्बन्धों के सूक्ष्म रेखांकन और शिल्पशैली से संस्मरण को विश्वसनीयता प्रदान की है ।

●

विश्वविद्यालय के प्रांगण से

मैं हिन्दी क्यों पढ़ता हूँ..

स्टीवन गूछार्दी (हिन्दी छात्र, यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो, मिसीसागा)

(टोरोंटो विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ रहे इटैलियन मूल के बच्चे की कलम से)

करोड़ों हिन्दी बोलने वालों के होने के बावजूद कैनेडा में बहुत कम लोग हिन्दी पढ़ने का निश्चय करते हैं । हिन्दी भारत की एक बड़ी सार्वजनिक भाषा है, मीडिया की भाषा है और साहित्यिक भाषा भी है। मैंने 2006 में हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ की ।

मुझे बचपन से भाषाएँ सीखना बहुत पसन्द है। मैंने हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ की क्योंकि मैं एक नयी लिपि सीखना चाहता था । मैंने अरबी लिपि और देवनागरी देखी। मैंने दूसरे को चुन लिया क्योंकि मुझे देवनागरी अरबी लिपि से अधिक सुंदर लगी ।

मैंने धीरे से मनोरंजन के रूप में देवनागरी सीखना प्रारम्भ की, लेकिन मैं नियमित रूप से नहीं पढ़ता था । मैंने 2008 में दोबारा हिन्दी पढ़ना शुरू किया क्योंकि मैं हिन्दी फ़िल्में देखता था और मैं हिन्दू धर्म पढ़ता था । उस साल की छुट्टी के दौरान मैं हिन्दी पढ़ता था। उसके बाद यूनिवर्सिटी ऑफ टोरण्टो में मैंने Introduction to Hindi हिन्दी कोर्स लिया। मैं 2010–2011 में पटियाला, भारत गया था, जहाँ मैंने अपनी हिन्दी के साथ बेझिझक बोलना शुरू किया । आज भी मैं अपनी हिन्दी को सुधारने का प्रयास कर रहा हूँ और इसीलिए यूनिवर्सिटी ऑफ टोरण्टो, मिसीसागा में Intermediate Hindi कोर्स कर रहा हूँ। मुझे बहुत अच्छा लगता है जब मैं सब विद्यार्थियों के साथ हिन्दी बोलता हूँ। मेरी हिन्दी, हिन्दू धर्म और उत्तरी भारतीय संस्कृति में बहुत रुचि है । हिन्दी भाषा संगीत, साहित्य, नृत्य और बॉलिवुड हिन्दी फ़िल्मों की वाहक है ।

भारतीय सरकार को अंतरराष्ट्रीय शहरों में सांस्कृतिक केन्द्र बनवाना चाहिए जहाँ हिन्दी पढ़ायी जा सकेगी। जर्मन सरकार ने गोटा (Goethe) संस्थान बनवाया है जर्मन पढ़ाने के लिए, फ्रेंच सरकार ने अलीआन्स (Alliance) फ़्रान्सेज़ बनवाया है फ्रेंच पढ़ाने के लिए, और चीनी सरकार ने कनफ़्यूशस (Confucius) संस्थान बनवाया है चीनी पढ़ाने के लिए । भारतीय सरकार को भी यह करना चाहिए ताकि हम सब भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषा पढ़ सकें ।

●

पुस्तकें जो हमें मिलीं

●बहता पानी ●मुझे बुद्ध नहीं बनना
●रोशनी का घट ●उत्तरायण ●यह युग रावण है

बहता पानी
लेखिका –
अनिल प्रभा कुमार
प्रकाशक –
भावना प्रकाशन
109,
पटपड़गंज,
दिल्ली –110091
दूरभाष –
22756734
मूल्य :
300 रु.

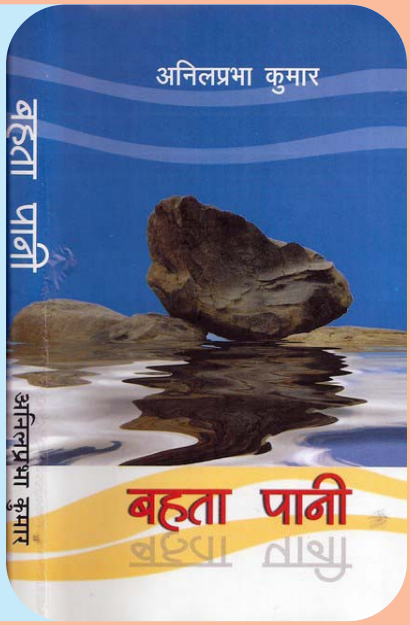

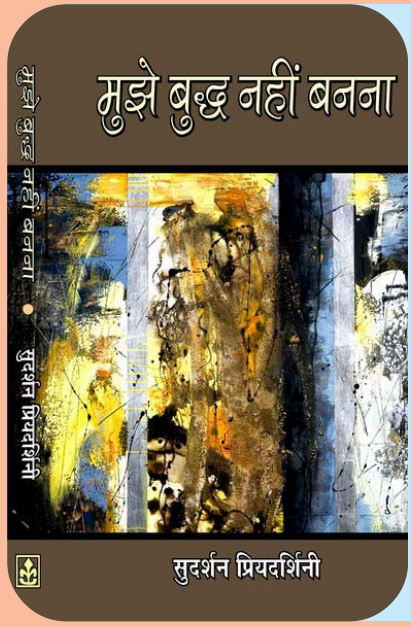

मुझे बुद्ध नहीं बनना
(कविता)
लेखिका –
डॉ. सुदर्शन
प्रियदर्शिनी
अयन प्रकाशन
१/२०
महरोली,
नई दिल्ली –
११००३०
मूल्य –
रुपये २५०.००

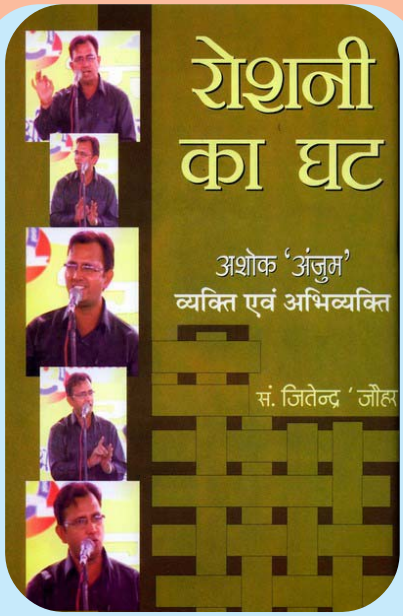

लेखक : जितेन्द्र जौहर
सरस्वती प्रकाशन
सारस्वत १ बी. एन छिब्बर मार्ग,
देहरादून –२४८००१
मुद्रक , भानु प्रिंटर्स , दिल्ली
मूल्य ३०० /–

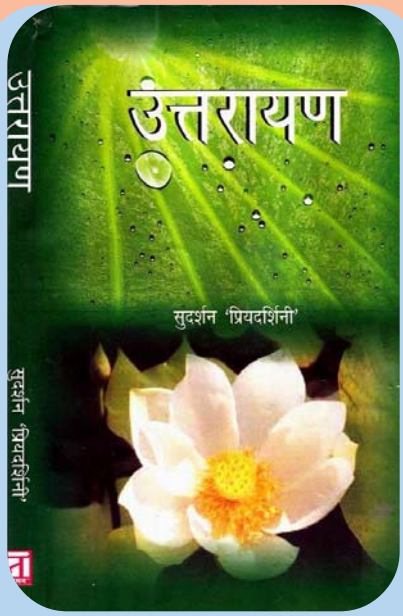

कहानी संग्रह --उत्तरायण
लेखिका –
डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी
प्रकाशक –नमन प्रकाशन, 4231 /
1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई
दिल्ली–110002

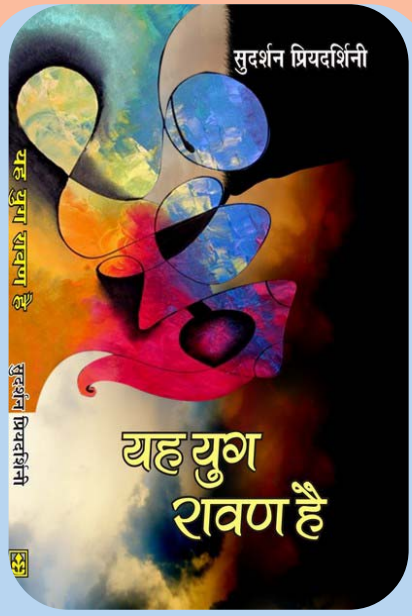

यह युग रावण है (कविता)
लेखिका –
डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी
अयन प्रकाशन १/२० महरोली ,
नई दिल्ली –११० ०३०
मूल्य – रुपये २५०.००

पत्रिकाएँ जो हमें मिलीं

●पुष्पगंधा ●रचना समय ●सृजन सन्दर्भ ●वर्तमान साहित्य ●विश्व हिन्दी पत्रिका -2011

पुष्पगंधा
सम्पादक -
विकेश निझावन
५५७-बी,
सिविल लाइन्स,
आई.टी.आई.बस
स्टॉप के सामने
अम्बाला शहर -
134003
(हरियाणा)

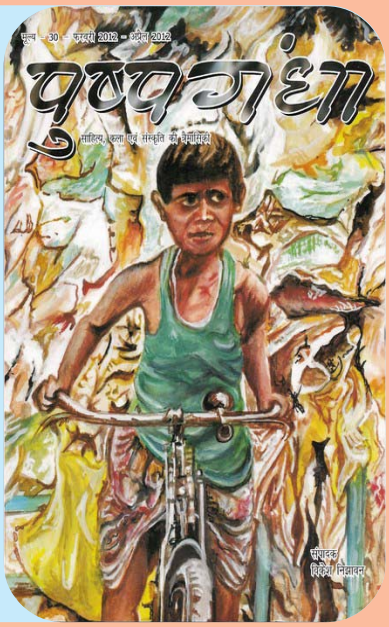

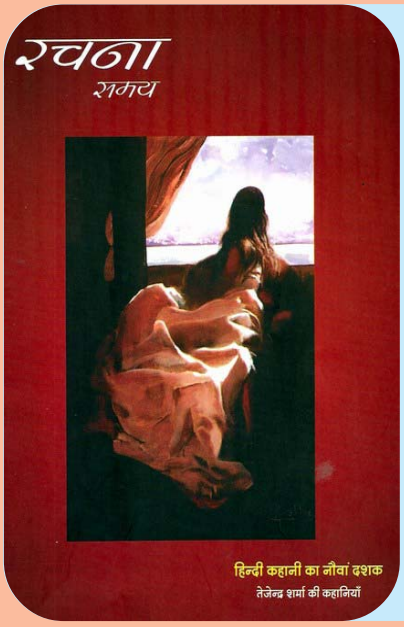

रचना समय
सम्पादक -
बृजनारायण शर्मा,
अनिल जनविजय
अतिथि सम्पादक-
हरि भटनागर
197,
सेक्टर -बी
सर्वधर्म कालोनी,
कोलार रोड,
भोपाल -462042
(मध्य प्रदेश)

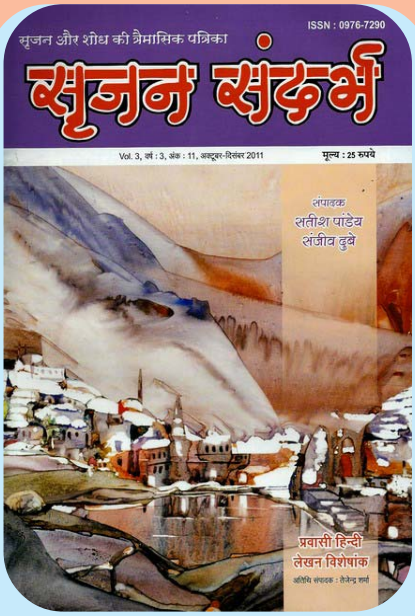

सृजन सन्दर्भ -
प्रवासी हिन्दी लेखन विशेषांक
अतिथि सम्पादक -
तेजेन्द्र शर्मा
सम्पादक -सतीश पांडये,
संजीव दुबे

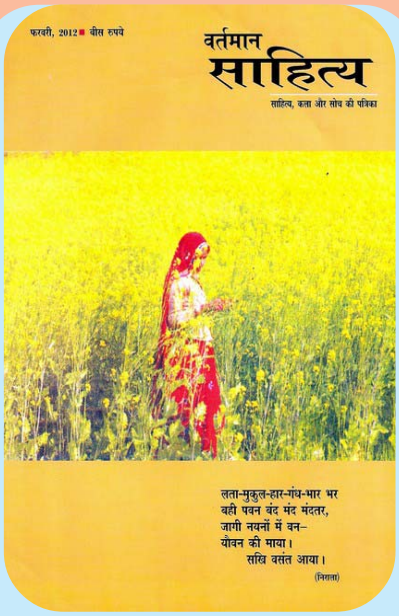

वर्तमान साहित्य
सम्पादक -नमिता सिंह
28, एमआईजी,
अवंतिका -1,
रामघाट रोड,
अलीगढ़-202001

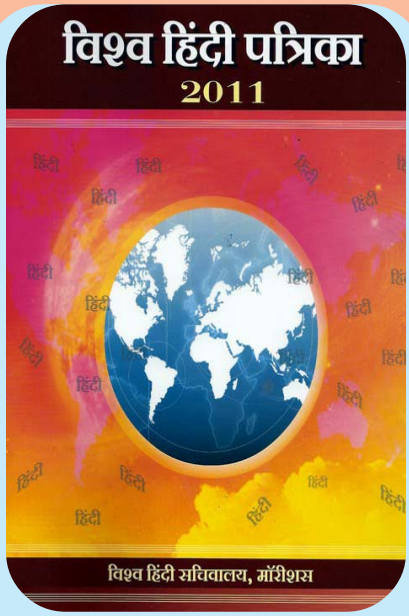

विश्व हिन्दी पत्रिका -2011
प्रधान सम्पादक -
श्रीमती पूनम जुनेजा
सम्पादक -
श्री गंगाधरसिंह सुखलाल
विश्व हिन्दी सचिवालय,मॉरिशस

FAMILY DENTIST

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

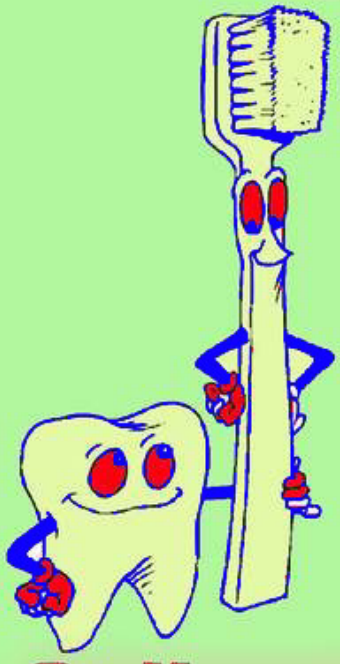

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Dr. Kiran Arora
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

साहित्यिक समाचार

प्रवासी साहित्य की आलोचना के लिये नये मापदण्ड बनें

('प्रवासी हिन्दी साहित्य पर अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद)

महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी के सहयोग से कथा यू.के. लन्दन एवं एस.आई.ई.एस. कॉलेज (मुंबई) के हिन्दी विभाग के संयुक्त तत्वावधान में 'प्रवासी हिन्दी साहित्य उपलब्धियां और अपेक्षाएं' विषय पर आयोजित दो-दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित किया गया। प्रसिद्ध कथाकार और कथा यू.के. के महासचिव तेजेन्द्र शर्मा ने विषय प्रवर्तन करते हुए कहा, ''परंपरागत आलोचना प्रवासी साहित्य के साथ पूरा न्याय नहीं कर सकती । उन्होंने सवाल किया कि लेखक तो प्रवासी हो सकता है, क्या किसी भाषा का साहित्य भी प्रवासी हो सकता है ? साहित्य को अलग अलग ख़ांचों में बांटना घातक सिद्ध हो सकता है।''

एस.एन.डी.टी. महिला विद्यापीठ की पूर्व कुलगुरु डॉ. चंद्रा कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी के कार्याध्यक्ष डा. दामोदर खड़से ने परिसंवाद का उद्घाटन करते हुए कहा कि प्रवासी साहित्यकारों ने विश्व स्तर पर हिन्दी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । विशेष अतिथि के रूप में लन्दन (यू.के.) से पधारी कथाकार ज़किया ज़ुबैरी ने कहा कि आलोचक हमें बताएँ कि उनकी प्रवासी साहित्य से क्या अपेक्षाएँ हैं । मुख्य अतिथि डॉ. असग़र वजाहत ने बीज वक्तव्य में कहा कि प्रवासी लेखन ने विगत दो दशकों में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है । उसे किसी से अपनी जगह पूछने की जरूरत नहीं है। उन्होंने जोर दिया कि प्रवासी साहित्य के दायरे में पाकिस्तान और बंगला देश को भी शामिल किया जाना चाहिए। परिसंवाद के आरम्भ में प्राचार्या डॉ. हर्षा मेहता ने महाविद्यालय एवं हिन्दी विभाग द्वारा किये जा रहे उल्लेखनीय कार्यों की चर्चा करते हुए अतिथियों का स्वागत किया । अंतर्राष्ट्रीय परिसंवाद के प्रवासी साहित्य की अवधारणा पर केंद्रित प्रथम सत्र में डॉ.रामजी तिवारी (पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, मुंबई विश्वविद्यालय), डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय (पूर्व प्रोफ़ेसर, ओरिएंटल विश्वविद्यालय), श्री सुंदरचंद ठाकुर (सम्पादक, नवभारत टाइम्स) ने महत्वपूर्ण विचार रखे। प्रवासी लेखकों में श्रीमती ज़किया ज़ुबैरी (यू.के.), श्री तेजेंद्र शर्मा (यू.के.), श्रीमती नीना पॉल (यू.के.), श्री उमेश अग्निहोत्री (यू.एस.ए.), डॉ.अनीता कपूर (यू.एस.ए.), श्रीमती देवी नागरानी (यू.एस.ए.), एवं श्रीमती अंजना संधीर (यू.एस.ए.) ने प्रवासी साहित्य के विविध पक्षों पर महत्वपूर्ण वक्तव्य दिए । प्रवासी साहित्य पर अंतर्राष्ट्रीय परिसंवाद के पहले दिन की शाम प्रवासी कवि सम्मेलन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के कारण यादगार बन गयी. श्री देवमणि पाण्डेय के संचालन में श्रीमती ज़किया ज़ुबैरी (यू.के.), श्रीमती नीना पॉल (यू.के.), श्रीमती देवी नागरानी (यू.एस.ए.), डॉ. अंजना संधीर(यू.एस.ए.), एवं श्री तेजेंद्र शर्मा (यू.के.) ने अपनी ताज़ा कविताओं एवं ग़ज़लों का पाठ किया. महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने रंगारंग नृत्य-गीत प्रस्तुतियों से दर्शकों का मन मोह लिया. इस रंगारंग कार्यक्रम की विशेष प्रस्तुति रही एक नेत्रहीन बच्चों के बैण्ड का कव्वाली गायन। कथा यू.के. की संरक्षक काउंसलर ज़किया ज़ुबैरी ने संस्था की ओर से इस बैण्ड का उत्साह बढ़ाने के लिये उन्हें पाँच हज़ार रुपये की राशि प्रदान की।

प्रवासी साहित्य कि अवधारणा, प्रवासी हिन्दी कविता, प्रवासी हिन्दी कहानी, प्रवासी हिन्दी उपन्यास तथा विविध विधाओं में लिखे जा रहे प्रवासी साहित्य पर केंद्रित विभिन्न सत्रों में कथाकार श्रीमती सूर्यबाला, श्रीमती सुधा अरोड़ा, डॉ. हरियश राय, डॉ.एम.विमला (बंगलोर), डॉ.शांति नायर (केरल), डॉ.विजय शर्मा (जमशेदपुर), डॉ.लालित्य ललित (दिल्ली) ने अपने विचार रखे । सुश्री अजंता शर्मा (दिल्ली), डॉ. सुमन जैन, डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ.एस.पी.दुबे, डॉ. अनिल सिंह, डॉ. शशि मिश्रा, डॉ. उषा राणावत, डॉ. उषा मिश्रा, श्रीमती मधु अरोड़ा, श्रीमती रेखा शर्मा, डॉ. मिथिलेश शर्मा, श्री दिनेश पाठक, डॉ.मनीष मिश्रा, डॉ. अशोक मरडे, डॉ.संदीप रणभिरकर, सुश्री गीता सिंह, श्री एस.एन.रावल, डॉ.श्यामसुन्दर पाण्डेय, डॉ.जयश्री सिंह, श्रीमती तबस्सुम ख़ान आदि ने अनेक प्रवासी रचनाकारों के अवदान पर केंद्रित प्रपत्र प्रस्तुत किये । इन प्रपत्रों में उषा प्रियम्वदा, सुषम बेदी, ज़किया ज़ुबैरी, सुधा ओम ढींगरा, सुदर्शन सुनेजा, रेखा मैत्र, जय वर्मा, नीना पॉल, दिव्या माथुर, उषा राजे सक्सेना, पुष्पा सक्सेना, उमेश अग्निहोत्री, अर्चना पैन्यूली एवं तेजेन्द्र शर्मा आदि प्रवासी साहित्यकारों के अवदान पर चर्चा की गयी । उक्त प्रपत्रों के अतिरिक्त प्रवासी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों पर भी वक्ताओं ने अपने विचार रखे । परिसंवाद में मुंबई के प्रतिष्ठित रचनाकारों, समीक्षकों, पत्रकारों एवं प्राध्यापकों की उपस्थिति उल्लेखनीय रही ।

समापन सत्र की अध्यक्षता की एस.आई.ई.एस. कॉलेज की प्राचार्या डॉ. हर्षा मेहता ने, विशेष अतिथि रहे डॉ. लालित्य ललित (संपादक, नेशनल बूक ट्रस्ट, नयी दिल्ली), जबकि प्रमुख वक्ता थे कथाकार तेजेन्द्र शर्मा ।

अंत में इस अधिवेशन के संयोजक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. संजीव दुबे ने सभी विशेष मेहमानों, वरिष्ठ साहित्यकारों के प्रति आभार प्रकट किया। कथा यू.के. एवं एस.आई.ई.एस. कॉलेज के सफल प्रयासों के लिए प्राचार्या डॉ. हर्षा मेहता, इस अधिवेशन के संयोजक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. संजीव दुबे, कथा यू.के के महासचिव एवं कथाकार श्री तेजेंद्र शर्मा को बधाई।

''प्रपत्र वाचक'' खास तौर पर बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उन्होनें कठिन प्रयासों से प्रवासी लेखन को पढ़ा, चिंतन-मनन करके अपने चुनाव के प्रवासी भारतीय रचनाकार के बारे में डूबकर उनके काव्य, कहानी, उपन्यास की कड़ियाँ जोड़कर, अपने प्रपत्र को सोच और शब्दों में बुनकर बहुत ही सर्जनात्मक ढंग से अपने-अपने विषयों पर रौशनी डाली। यह इस सम्मेलन की अपने आप में एक विशिष्ट उपलब्धि है। परिसंवाद के आयोजन में डॉ. उमा शंकर, प्रो. रजनी माथुर, प्रो. लक्ष्मी, प्रो. कमला, प्रो. सुचित्रा, प्रो. सीमा, प्रो. शमा, प्रो. वृशाली एवं विद्यार्थियों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई ।

-कथा यूके ब्यूरो, प्रस्तुति सुभाष नीरव

हिन्दी दिवस : सांस्कृतिक धरोहर का उत्सव

डिपार्टमेंट ऑफ लेंग्वेज स्टडीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो, मिसीसागा ने 8 मार्च 2012 को रंगोत्सव होली के अवसर पर हिन्दी दिवस मनाया। दिनभर फैकल्टी क्लब और मिस्ट थिएटर में कई रंगारंग कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। कैनेडियन मीडिया और भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान देते हुए हिन्दी टाइम्स के प्रकाशक राकेश तिवारी ने कहा कि भारतीय संस्कृति का ह्रदय बहुत विशाल है। मीडिया पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि वैसे कोई खबर न हो तो वह अच्छी खबर होती, पर अच्छी खबर वह होती है जो मानवीय जिंदगी को उन्नति की राह दर्शाए। उन्होंने समाज के उत्थान के लिए सकारात्मक खबरों की आवश्यकता पर बल दिया। इस अवसर पर हास्य कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें जाने-माने कवियों श्री श्याम त्रिपाठी, डॉ. देवेन्द्र मिश्र, भगवतशरण श्रीवास्तव, सुमन घई, राज माहेश्वरी, राज शर्मा और आशा बर्मन ने भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए श्री श्याम त्रिपाठी ने विश्वास प्रकट किया कि यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो, मिसीसागा आगामी वर्षों में हिंदी कार्यक्रमों को व्यापक बनाएगी। इस अवसर पर यूटीएम के प्राचार्य डॉ. दीप सैनी ने कवियों का स्वागत करते हुए कुछ शेर सुनाए। दोपहर से शाम तक हिन्दी छात्रों द्वारा प्रस्तुत वेरायटी शो में विविधता से पूर्ण कार्यक्रमों की धूम रही। दर्शकों से खचाखच भरे मिस्ट थिएटर ने नृत्य, गान, अभिनय और फैशन शो का आनंद उठाया। सुश्री कैली हना मॉफट ने अपने उद्बोधन में कहा कि भारत की विकसित होती अर्थव्यवस्था में शैक्षिक विकास के लिए हिन्दी का बहुत योगदान रहा है। प्रो. माइकल लेटेरी, चेयर, डिपार्टमेंट ऑफ लेंग्वेज स्टडीज़ ने सभी भाषाओं और संस्कृतियों को कैम्पस में लाने की इच्छा जाहिर की ।

-डॉ. हंसा दीप (कैनेडा)

प्रेम भारद्वाज के प्रथम कहानी संग्रह 'इंतजार पांचवे सपने का' का लोकार्पण

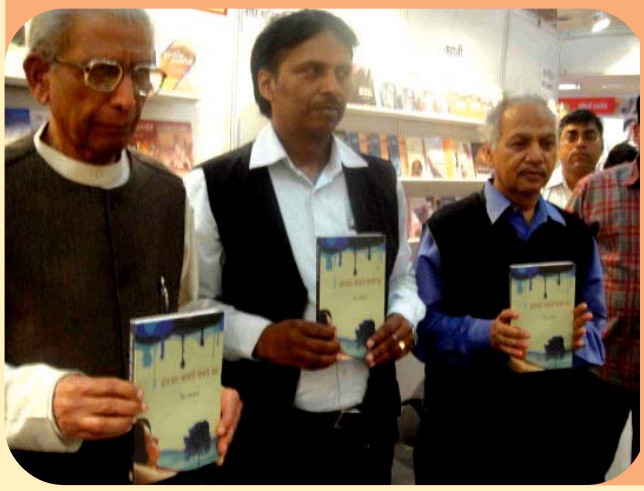

दिल्ली में आयोजित विश्व पुस्तक मेले में कहानीकार प्रेम भारद्वाज के प्रथम कहानी संग्रह 'इंतजार पांचवे सपने का' का लोकार्पण सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने किया । इस अवसर पर बोलते हुए डॉ नामवर सिंह ने प्रेम भारद्वाज की कहानियों को गहरे सामाजिक सरोकार से जुड़ा और खास भाषा शैली वाला बताया । कथाकार संजीव ने कहा कि मौजूदा संग्रह की कहानियां एक मॉडल हैं कि बिना किसी कृत्रिम आलंबन के भी कला की शर्तों को बिना उलझाये भी कला के नये प्रतिमान निर्मित किये जा सकते हैं साथ ही सामाजिक सरोकारों की लड़ाई में अपनी भूमिका बनाए रखी जा सकती है । इसी मौके पर विश्वनाथ त्रिपाठी ने प्रेम भारद्वाज द्वारा संपादित पुस्तक नामवर सिंह एक मूल्यांकन का भी लोकार्पण किया । यह पाखी के 'नामवर सिंह विशेषांक' का पुस्तककाकार रूप है । प्रेम भारद्वाज पिछले बीस सालों से पत्रकारिता कर रहे हैं । वे पाखी के संपादक भी हैं । लोकार्पण के अवसर पर भारत भारद्वाज, भारत यायावर, मृदुला गर्ग, विश्वनाथ त्रिपाठी, भालचंद्र जोशी, जयश्री राय, गीताश्री, अनंत विजय, प्रेमपाल शर्मा आदि मौजूद थे ।

व्यंग्य श्री सम्मान डॉ. हरीश नवल को

१५ फरवरी २०१२ की संध्या को हिन्दी भवन, दिल्ली में डॉ. हरीश नवल को व्यंग्यश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार प्रख्यात हास्य व व्यंग्य लेखक श्री गोपाल प्रसाद व्यास की याद में हिन्दी भवन की ओर से दिया जाता है। इस वर्ष यह सम्मान प्रख्यात लेखक श्री महीप सिंह व श्री बालस्वरूप राही द्वारा दिया गया। सम्मान समारोह का संचालन व्यंग्यकार डॉ. प्रेम जनमेजय ने किया। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता व्यंगकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी थे, जिन्होंने हिन्दी व्यंग्य में डॉ. हरीश नवल के व्यंग्य के स्थान की चर्चा की। उन्होंने कहा कि डॉ. नवल का हिन्दी व्यंग्य में अपना विशेष स्थान है जिसकी तुलना किसी से नहीं कि जा सकती। डॉ. प्रेम जनमेजय ने हरीश नवल के साथ अपनी घनिष्ठ मित्रता की बात की और डॉ. नवल के कई प्रमुख व्यंग्य के उदाहरण दिए। डॉ. रामदरश मिश्र ने हरीश नवल जी को अपना प्रिय शिष्य बताया और उनके लेखन की प्रशंसा की। श्री बालस्वरूप राही ने भी डॉ.नवल के साथ अपने लम्बे सान्निध्य की बात की । हरीश नवल ने अपने वक्तव्य में सबसे पहले हिन्दी भवन और डॉ. गोविंद व्यास का धन्यवाद ज्ञापन किया। उन्होंने अपनी लेखन यात्रा पर चर्चा की । डॉ. हरीश नवल को सम्मानित करते हुए, एक वाग्देवी की मूर्ति, शॉल, प्रमाण पत्र और ५१ हज़ार रुपये दिए गए ।

डॉ. शेरजंग गर्ग, प्रदीप पंत, वीरेन्द्र प्रभाकर, दिनेश मिश्रा, रेखा व्यास, लालित्य ललित, रवि शर्मा, अमर नाथ अमर, अरविंद गौरढ़, स्नेह सुधा नवल, इंदिरा मोहन, प्रताप सहगल आदि कुछ प्रमुख नाम कार्यक्रम में शामिल थे।

संयोग साहित्य एवं साहित्यिक अंजुमन द्वारा गोष्ठी आयोजित

मुंबई, संयोग साहित्य एवं साहित्यिक अंजुमन द्वारा आयोजित तथा म.ना.नरहरि द्वारा कांदिवली, ठाकुर विलेज में संयोजित गोष्ठी में हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक तथा वरिष्ठ शायर डॉ.श्याम सखा श्याम एवं दिल्ली से पधारे समय संवाद पत्रिका के संपादक श्री रमेश कुमार जी को सम्मानित किया गया। इसी अवसर पर साहित्यिक अंजुमन संस्था के अध्यक्ष खन्ना मुज़फ़्फ़रपुरी, संस्था की महासचिव तथा हेमंत फाउंडेशन की कार्याध्यक्ष सुमीता केशवा, अध्यक्ष संतोष श्रीवास्तव ने भी डॉ. श्याम सखा श्याम तथा श्री रमेशकुमार जी का सम्मान किया। गोष्ठी में कवि नीरज कुमार, गज़ल सम्राट डा. श्याम सखा श्याम, देवी नागरानी,नेहा वैद्य,हेमा चंदानी,रमाकान्त शर्मा,पूजा दीक्षित आदि सभी ने अपनी-अपनी खूबसूरत रचनाओं से महफिल को सराबोर किया। वनमाली चतुर्वेदी के सधे हुए संचालन में कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ व्याकरणाचार्य श्री आर.पी.महर्षि जी ने की। कार्यक्रम के अन्त में शैलेन्द्र कुमार, सरला अग्रवाल,भारत भूषण,अदम गोडवी,मरियम गज़ाला को श्रद्धांजलि देते हुए एक मिनट का मौन रखा गया।

मस्कत में विश्व हिंदी दिवस

विश्व हिंदी दिवस समारोह की पिछले ४ वर्षों में लोकप्रियता और स्वरूप दोनों में प्रगति हुई है, हर बार की तरह इस बार भी इसे भारतीय राजदूतावास के तत्वाधान में भारतीय समाजिक संस्था की हिंदी शाखा ने इसे आयोजित किया । स्थान था भारतीय राजदूतावास मस्कत का सभागार । सर्वेषाम् स्वस्तिर भवतु, सर्वेषाम् सुखिन भवतु, सर्वेषाम् पूर्णम भवतु, सर्वेषाम् मंगल भवतु के सामूहिक उच्चारण से प्रारंभ हुए कार्यक्रम की विधिवत शुरुआत हुई ओमान में भारत के राजदूत श्री जे एस मुकुल द्वारा दीप प्रज्वलन से कार्यक्रम का सञ्चालन सुकृति और पूजा ने किया ।

मस्कत के ५ भारतीय विद्यालयों के ९० छात्र छात्राओं आयोजित चार प्रतियोगिताओं में भाग लिया । हिंदी कविता पाठ प्रतियोगिता जिस का विषय राष्ट्रभक्ति था के अतिरिक्त हिंदी वर्तनी, बोलिए एक मिनट और हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया । निर्णायक मंडल में सर्व श्री सी. एम. सरदार, जगमोहन साँघा और विनय प्रसाद सम्मिलित थे ।

महामहिम राजदूत महोदय अपनी दैनन्दिन भाषा हिंदी न होते हुए भी हिंदी में बोले और पूरे समय कार्यक्रम में उपस्थित रहे । इस कार्यक्रम के आयोजन में स्वयं राजदूत महोदय के अलावा राजदूतावास के श्री चौहान और श्रीमती विजय लक्ष्मी का विशेष सहयोग रहा । आयोजन प्रबंधन में सर्व श्री संदीप मल्होत्रा, राजेश डागा, दीपक मुंशी और संजय सर्राफ कि विशेष भूमिका रही । कार्यक्रम की सफलता और उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए आयोजकों ने भविष्य में कार्यक्रम और बड़े स्तर पर करने का संकल्प किया ।

●भाषान्तर : रमेश शौनक

यातनाएँ (टारचर)

मूल रचना : नोबल पुरस्कार विजेत्री, विस्सावा शिम्बोर्स्का (१९२३-२०१२)

कुछ भी तो नहीं बदला है
जिस्म तो दर्द से भरपूर है
इसे अन्न चाहिए
हवा चाहिए नींद चाहिए
खाल है भी तो कितनी पतली
खून भी ज्यादा दूर नहीं
दांत हैं, नाखून हैं खासी तादाद में
हड्डियां हैं जो तोड़ी जा सकती हैं
जोड़ हैं जो खैंचे जा सकते हैं
यातना देने के लिए
इन सब बातों को ध्यान में रखा जाता है
कुछ भी तो नहीं बदला है
शरीर कांपता है अब भी, जैसे कांपा करता था
रोम की स्थापना से पहले और उसके बाद
यातनाएं तो जैसी थीं वैसी ही हैं अब भी
सिर्फ ज़मीन सिकुड़ गई है
और जो भी होता है ऐसा लगता है
बस बराबर वाले कमरे में हो रहा है
कुछ भी तो नहीं बदला है
बस लोग बहुत हो गये हैं
और पुराने अपराधों के साथ साथ
नए अपराध उभर आये हैं –
यथार्थ, मनघड़ंत, लम्हाती और बेवजूद
लेकिन यातना के जवाब में
शरीर का क्रन्दन मासूमियत की वही चीख़ है
जिसके सुर और लय सदियों से वही हैं
कुछ भी तो नहीं बदला है
हाँ, अगर बदले हैं तो
कुछ अंदाज़, जश्न और जलसे
लेकिन सर को बचाने के लिए
हाथों की भंगिमा वही है
अब भी शरीर बल खाता है
सिहरता है
धक्का देने पर गिरता है
घुटनों के बल गिरता है
खरोंच खाता है
सूजता है
लार छोड़ता है
खून बहाता है
कुछ भी तो नहीं बदला है
सिर्फ नदियों के रास्ते
जंगलों साहिलों रेगज़ारों और
बर्फजारों की शक्लें
और नन्ही जान
भटकती फिरती है
उन मनाज़िर के बीच
कभी गायब हो जाती है
कभी पलट आती है
कभी निकट आती है
कभी दूर चली जाती है
गुरेज़ करती है,
अजनबी हो जाती है
अपने ही वजूद के प्रति
कभी निश्चित, कभी अनिश्चित
लेकिन शरीर है तो है तो है
और जाए भी तो कहाँ ?

●

romeshshonek@gmail.com

कुछ विस्सावा शिम्बोर्स्का के बारे में

पोलैंड के प्रमुख कवियों ने किसी भी प्रकार के राजनितिक सम्प्रदाय या विचारप्रणाली के प्रति पूर्ण आस्था नहीं दिखाई । १९४९ में समाजवादी यथार्थवाद पोलिश कलाकारों पर थोपा गया और जैसा कि मिलोश ने लिखा है ''आर्वेल की दुनिया पोलैंड में साहित्यिक कल्पना हुआ करती थी ।'' शिम्बोर्स्का का नाम बहुत कम लोगों ने सुना था । थोड़े वक़्त के लिए उन्होंने भी साम्यवाद पर विश्वास किया, कुछ घोर समाजवादी यथार्थवाद की कवितायें लिखीं । जिनके लिए उत्साहित होना आसान नहीं था, बहुत समय नहीं बीता कि इन कवियों की समझ में आ गया कि साम्यवाद एक युटोपियन फंतासी है । १९५६ के बाद सेंसरशिप की जकड़ ढीली कर दी गई तो शिम्बोर्स्का ने अपनी पहचान पा ली और एक प्रमुख कवि के रूप में उभरने लगीं । उनकी तीसरी पुस्तक 'कालिंग आउट टू येती ' में स्टालिनवाद से उनकी निराशा प्रकट होती है और उसका स्थान ले लेती है एक गहरी शंका और व्यंग्य । येती हिमपुरुष स्टालिनवाद का केंद्रीय मेटाफर है । साम्यवाद और हिमपुरुष दोनों में मानवीय गर्माहट ? 'हिमालय पर काल्पनिक आरोहण पर कुछ नोट्स' की अंतिम पंक्ति में शेक्सपियर का नाम आता है।

शिम्बोर्स्का की कविता वह चौखटा अपनाने से इनकार करती है जिसमे कविता को अन्यून उत्कृष्टता (परफेक्शन) का यूटोपियन स्वप्न सौंपा गया है जिसमे कविता से उम्मीद की जाती है कि वह राष्ट्रों और व्यक्तियों को बचा सकती है. उनकी कविता हमारे सांझे अनुभवों पर रौशनी डालती है । बीसवीं शताब्दी के बारे में ऐसा कुछ आधारभूत है जिसे वे बखूबी समझती हैं और अपने मखसूस हिकारत आमेज़ अंदाज़ से भरी कविता में प्रकट करती हैं ।

●संध्या द्विवेदी (भारत) ●शानू सिन्हा (अमेरिका)

एक – एक रोटी दान करो

संध्या द्विवेदी (भारत)

पट ना है, कुंडे में लटका आहत चीर का इक गुच्छा
झाँक जो देखा चिड़िया काठी मानुष जीव का बच्चा
हवा से पेंगे भरा करे, उसका वजूद ना सच्चा
ऐसा प्रतीत सा होता, मृत डाली पे सूखा पत्ता
नज़र उठाए उठ ना पाई, इतना लघु था बासरा
इक तो तन फैला भी सके, दूजा रात उकड़ूँ ही बिसारता
पट न होना भी आनन्द कभी,
कैसे सिकुड़न जोड़ों की झुठलाता कैसे थोड़ा ढरक सा पाता
इक झोली सी खाट पे लेटी इक हड्डी का ढांचा
देख के लागे, क्यूँ उसकी कोई कबर खोद नहीं आता
साँसों पे भी अहसान है करती जो उन्हें गुज़रने देती
चलती तो हड्डी संग उसकी धड़कन भी है बजती
बदन पे उसके चीर नाम का, कहीं ढके कहीं खुल जाए
लज्जा से ढांके वो बदन अपना, उसे देख के शरम सी आये
झोली सी खाट में, उसके ऊपर, उसकी आधी मरी सी बेटी
इतने दुःख, आनन्द कभी, माँ के आंचल में ही सोती
उफ़ ये वीभत्स चित्र गरीबी का, देख मन विचलित हो जाये
चार हैं साँसें, लाशें चार, घर में कैसे अड़स ही जाये
जब उठती वो रखती हाँडी, उसमें डाले चावल चार
चार ही दानें दाल के डाले, और मिलाती कंकरें चार
खुद को दुहती फिर भी क्योंकि पास है उसके माँ का प्यार
वो हिलती सी चलती है, खड़ा किये उसको परिवार
उफ़ ये हृदय द्रवित चित्र आगे न वर्णन पायेगा
आँख के आँसू सूख गये, ना मुझसे देखा जाएगा
ऐसे लाखों परिवार यहाँ, ना वो भोजन पायेगा
सब एक एक रोटी दान करो,
थोड़ा उनका भी कल्याण करो
सृजन उन्हें भी किया प्रकृति ने,
थोड़ा उनका भी सम्मान करो ।

●

san_dhya78@yahoo.co.in

माँ

शानू सिन्हा (अमेरिका)

सोचा दो शब्द लिखूँ तुझ पर,
एक कविता तुझे उपहार दूँ,
हर शब्द लगे हलके मुझे,
जो बयां कर सके तुझे ।

मैं हूँ निशब्द,
कहूँ क्या तुम्हें,
नहीं परिभाषा कोई तेरे प्यार की,
तू है अनमोल और तेरा प्यार भी ।

जो तूने है दिया मुझे
लगता असंभव मुझे
शब्दों में पिरोना उसे
ना मिले मुझे कोई ओर-छोर ।

ये अपार प्यार तो समंदर है
गहराई का ना है पता,
और ना कोई इसकी सीमा
कोई मापदण्ड नहीं इसका,
कैसे पाऊँ कोई कोना इसका ।

तू है माँ, बस मेरी प्यारी माँ
आँख मूंद मैं सोचूं तुझे,
तेरे आंचल में सर रख के
दो पल सुकूं से सो जाउँ मैं ।

●

shanusinha05@yahoo.com

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

Membership Form

For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt

Annual Subscription: **$25.00 Canada and U.S.A.**

Life Membership: **$200.00**

Donation: **$**_____

Method of Payment: **Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"**

For India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001
M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399

सदस्यता शुल्क (भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Name: _____

Address: _____

_____

_____

Telephone: Home: _____ **Business:** _____

Mobile: _____ **Fax:** _____

e-mail: _____

Contact in Canada:

Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham, Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:

Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560, USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

अधेड़ उम्र में थामी कलम

●ऊषा देव (अमेरिका)

बचपन में जब कभी लेखकों और कवियों को रचनाएँ लिखते देखती, या सुनती थी तो आश्चर्य होता था कि यह सब कैसे इतना कुछ लिख पाते हैं ? मेरे पिता जी छुट- पुट कविताएँ और लघुकथाएँ लिखा करते थे । उनसे भी कई बार पूछा, "आपको कैसे इतने विचार आते हैं और शब्द मिल जाते हैं, उन विचारों को कलमबद्ध करने के लिए ।" उनका उत्तर सदा यही रहता था , "बेटा, थोड़ी लगन , एकाग्रता और प्रयत्न की आवश्कता है , मौका मिल ही जाता है ।" खैर, ऐसा प्रयत्न कभी कर नहीं पायी , यहाँ तक कि युवावस्था भी निकल गयी ।

जब मैं इस देश में आई तो अधेड़ावस्था की दहलीज़ पर खड़ी थी। यहाँ मेरी मुलाक़ात सुधा ओम ढींगरा से हुई । साहित्य पढ़ने में मेरी और मेरे पति महेन्द्र जी की बहुत रुचि है । हम दोनों को बहुत से लेखकों की कविताएँ, ग़ज़लें ज़ुबानी याद हैं । गोष्ठियों में साहित्य पर बातचीत और चर्चा चलती रहती थी । कवि सम्मेलनों और कविगोष्ठियों में हम हमेशा शामिल होते थे । एक दिन सुधा जी ने अचानक कहा, "ऊषा जी आप , कुछ लिखिए , कुछ भी, चाहे कविता, कहानी, संस्मरण, आप लिख सकती हैं..... आप लिख सकती हैं , मैं जानती हूँ ।" मुझे यह आमन्त्रण असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य लगा ।

"अब इस उम्र में क्या लिखना शुरू करूँगी ? इसी ऊहापोह में कई दिन निकल गये । परन्तु सुधा जी का आग्रह बराबर बना रहा । सोचा, "हर्ज़ ही क्या है ? कोशिश करने में कुछ हानि तो नहीं और फिर अमरीका जैसा देश, जिसे 'अवसर की भूमि' कहा जाता है । यदि दृढ़ निश्चय हो तो व्यक्ति कुछ भी कर सकता है । अधेड़ावस्था राह का रोड़ा तो नहीं, बल्कि अनुभव तो सहायक ही हो सकता है ।" बस कलम उठायी और लिखना शुरू किया । विचार आते गए , शब्द मिलते गये और रचनाएँ कलमबद्ध होती गईं । 'हिंदी चेतना' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका ने मेरी कुछ कविताएँ और लघुकथाएँ प्रकाशित करके मुझे यह अवसर प्रदान किया । लिखने का प्रवाह जारी रहा । अधेड़ावस्था में भी युवावस्था का जोश भर आया और मैं लिखती चली गई.....अब तो पुस्तक आने वाली है....।

रेत से बना महल

रिश्ता वो जिस पे नाज़ था
यों टूट कर बिखर गया
ज्यों रेत से बना महल
एक लहर में उजड़ गया ।
कहते हैं साया अपना, अपने साथ है रहता सदा
सारा जमाना छोड़ साया नहीं होता जुदा
आई जो काली रात तो न जाने कब किधर गया
ज्यों रेत से बना महल
इक लहर से उजड़ गया ।
गुलशन में थी बहार, भँवरे नाचते और झूमते
हर गुल पे था निखार, हर कली का मुझ थे चूमते
आई खिज़ां तो प्यार का रुख़ से नक़ाब उतर गया
ज्यों रेत से बना महल
एक लहर से उजड़ गया ।
जब पीते थे-पिलाते थे, महफ़िल में जान थी
वो वक़्त ख़ुश गवार था, दुनिया जवान थी
मयख़ाना बंद हुआ तो साथी हर कोई बिछड़ गया
ज्यों रेत से बना महल
एक लहर से उजड़ गया ।
है कल की बात, रूप अपने पे बड़ा गुमान था
यह वक़्त बदलेगा नहीं, हमें पूरा इत्मिनान था
आया बुढ़ापा, चेहरा अपने आप से ही डर गया
ज्यों रेत से बना महल
एक लहर से उजड़ गया ।

●

विलोम चित्र काव्य शाला

●चित्रकार : अरविंद नराले
●कविः सुरेन्द्र पाठक

चित्र को उल्टा करके देखें

बहुधा देखा है दुनिया में, जो भी बनता है चित्रकार,
प्रकृति से कुछ ज्यादा ही, उसको हो जाता है प्यार,
कोई सुंदर दृश्य देखकर, जब वह हो जाए प्रभावित,
अपनी कलम की कलाकृति से, कर लेता है उसे अंकित,
कई बार ही अपने मन से, ऐसे दृश्य बनाये,
देखनेवाला उनको देखे, बस उस में ही खो जाए।
इस चित्र में अब देखिये, खड़ी हुई एक युवा नारी,
चित्रकारी का सामान हाथ में, कहीं बाहर जाने की तैयारी,
लम्बे बाल बाँध रिबन से, पीठ के पीछे हैं लटकाए,
लम्बी गर्दन कर कर ऊँची, दूर- दूर तक नज़र दौड़ाए,
कहाँ और किस जगह पर, अच्छा है प्राकृतिक दृश्य,
वो पहाड़ी या वो झाड़ी, या वो दो आमों के वृक्ष,
तारीख अठारा, दिन सोमवार, तख्ते पर लिखा आये नज़र,
कौन दिन क्या बनाया, इसकी भी उसे रहे ख़बर।

●

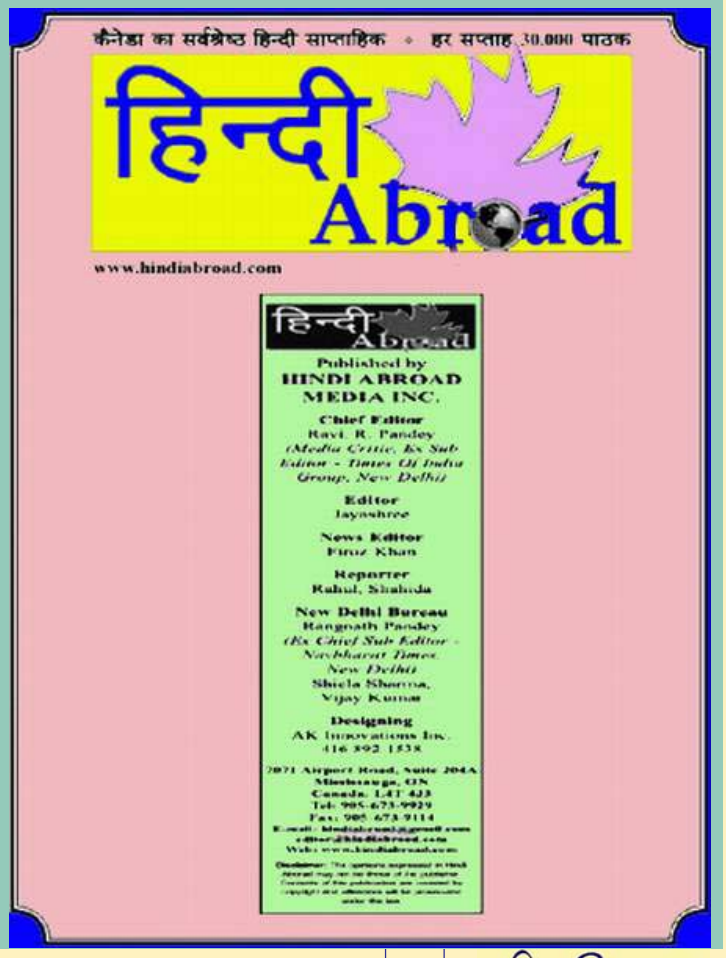

चित्र काव्य शाला

●चित्रकार : अरविंद नराले

लड़कियाँ अक्सर
ख़ुशी के पलों में
नाचती, झूमती
गाती-गुनगुनाती
पिघलते-से क्षणों को
उत्सव बना देती हैं ...
लड़कियाँ ही
गहनों से सजी-सँवरी
मखमल में लिपटी परियों -सी
हर घर को देव लोक-सा
एहसास देती हैं ...।

किरण मल्होत्रा (भारत)

●

व्याकुल मनवा मचल-मचल कर
उत्सव में रमने को उछल-उछल कर
मायूसी दूर भगाए ....
उत्सव के दिन आए....
सखी री उत्सव के दिन आए...
नृत्य, संगीत हवा में
मधु ऋतु छाई फ़िज़ा में
अलियों को थिरका बसंत दस्तक दे गई.....
उत्सव के दिन आए....
सखी री उत्सव के दिन आए...
हँसी-ठिठोली नव संचित स्वप्न
साकार कर
हृदय में गरबा रास रचा गई...
उत्सव के दिन आए....
सखी री उत्सव के दिन आए... ।

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

●

ढोल की थाप
डाँडिया की ताल
नाच उठा तन
गा उठा मन...
भूल के सब कुछ
नाची यूँ दीवानी
संगीत में झूमी
हो गई वह मस्तानी...।

दर्पण शर्मा (आस्ट्रेलिया)

●

जीवन की तरुणाई में आ सखी आनन्द मनाएँ,
कपड़ों-गहनों से सज-धज कर आ हम रास रचाएँ ।
मिलजुल कर त्यौहार मनाने का आनन्द निराला है,
सुर ताल पर कदम थिरकते, मन हुआ मतवाला है ।
सिर्फ पीटने को न डंडा, देता यह संगीत भी है,
दुश्मनों का दुश्मन यह, और मीतों का मीत भी है ।

महेन्द्र देव (अमेरिका)

●

देख आज अभ्यास
हुआ है मुझे पूर्ण विश्वास
नहीं तो चोटी से लेकर एड़ी तक
पसीना करने पर भी एक
लगा था ऐसा पिछली बार
कि बिगड़ा जाता था सब काम
नहीं था कोई और उपाय
काटना पड़ता डाँडिया रास
यद्यपि शांता बेन के हाथ
और कान्ता बेन के पद चाप
लचक का थोड़ा अभी अभाव
ठीक लाना है उन्हें प्रभाव
किन्तु लगता है ऐसा अब
(भगवन की जय-जय कार!)
साधना होगी अब साकार
होलिका के शुभ अवसर पर
हमारा डाँडिया रास नृत्यम
करेगा उत्तम मनोरंजन
और करते हैं आशा हम
सराहेंगे सब दर्शक गण ।

राज महेश्वरी (कैनेडा)

●

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

आख़िरी पन्ना

कई बार साहित्य में पारदर्शिता के नाम पर कुछ वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार अपनी मनघड़ंत शंकाओं को अशोभनीय भाषा में बस उगल देते हैं । कहने को वे मुद्दे पर बात करते हैं; पर मुद्दा बेचारा तो दूर खड़ा रो रहा होता है । वे तो बस दोषारोपण करते हैं और सच जाने बिना झूठ को ज़ोर-ज़ोर से बोल कर पाठकों को प्रभावित करने की कोशिश में लगे होते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि वे ईमानदार साहित्यकार हैं और साहित्य का भला चाहते हैं ।

बुद्धिजीवियों की काल्पनिक शंकाएँ क्या उनकी संकुचित मानसिकता की देन हैं या असुरक्षा और नकारात्मक सोच से पनपी होती हैं या बाज़ारवाद से प्रभावित हो जाते हैं कि चलो इस तरह चर्चा में तो हैं । वे कौन से ऐसे कारण हैं, जो प्रबुद्ध साहित्यकारों से ऐसा करवाते हैं ? क्या नकारात्मक ऊर्जा उनकी रचनात्मकता पर असर नहीं डालती ? मुद्दों से परे जाकर की गई बात, साहित्य का क्या भला कर सकती है ! या यह बस उनके अहम् की संतुष्टि होती है ।

पिछले कई दिनों से इस विषय पर चिन्तन-मनन हो रहा था । इसी विषय को लेकर भारत और विदेशों के कई साहित्यकारों से बातचीत भी की । वार्त्तालाप से जो बातें सामने आईं....।

बहुत से साहित्यकारों ने कहा कि ऐसा व्यवहार संकुचित मानसिकता की देन होता है, प्रतिष्ठा के साथ सोच बड़ी नहीं हो जाती; बल्कि प्रतिष्ठा असुरक्षा को जन्म देती है और ऐसे लोग साहित्य के हर काल में पाए जाते हैं । वे अपना काम करते रहते हैं और दूसरे लोग अपना काम करते रहते हैं ।

कई लेखकों ने कहा कि नकारात्मक सोच सकारात्मकता के साथ ही साथ चलती है । दोनों मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियाँ हैं । साहित्य में दोनों तरह के रचनाकार हैं ।

अधिकतर साहित्यकारों ने एक बात समवेत रूप से कही कि यह एक मानसिकता है; जिसका कोई इलाज नहीं । ऐसे मत्सरी लेखकों को जहाँ महसूस होता कि कोई आगे बढ़ रहा है, वहीं ऐसा जाल बुनते हैं कि सामने वाला सफ़ाई देने में अपनी रचनात्मक ऊर्जा नष्ट कर देता है और अपने असली मक़सद से भटक जाता है ।

मुझे संतुष्टि अभी भी नहीं हुई थी तभी एक लेखक ने मेरी जिज्ञासा शान्त करने का बीड़ा उठाया और कहा कि वह साहित्य में पारदर्शिता के नाम पर लिखे गए लेख व प्रतिक्रियाओं पर एक आलेख हिंदी चेतना को देगा, जिसमें अच्छे-बुरे अनुभव, उदाहरण, कारण, मंतव्य सब स्पष्ट रूप से बताए जाएँगे । देखें वह लेख कब पूरा करके देता है !

इस समय माँ की कही एक बात याद आ रही है, वे कहा करती थीं... प्रकृति हमें बहुत कुछ सिखाती है, पर मानव प्रवृत्ति उसे ग्रहण नहीं कर पाती । बेटी, हमेशा आकाश की ओर देखना.. वहाँ सूर्य चमकता है, चाँद और तारे भी चमकते हैं । आकाश में सब के लिए स्थान है । अपना दिल आकाश जैसा बड़ा रखना । किसी रचनाकार से ईर्ष्या नहीं करना, सबकी अपनी किस्मत और प्रतिभा होती है और उसी के अनुसार हरेक चमकता है ।

मित्रों ! आओ, हम सब आकाश की तरह बनें और सबको उभरने का मौका दें, जिसमें जितनी प्रतिभा होगी, वह उतना आगे बढ़ जायेगा और फिर समय की छलनी है सब को छानने वाली । हम अपनी ऊर्जा किसी को उठाने में ही व्यय करें, किसी को गिराने में उसे क्यों नष्ट करें । साहित्य के साथ हित-चिन्तन जुड़ा है । मेरी बात को सोचियेगा ज़रूर ...।

आपकी मित्र,

सुधा ओम ढींगरा

मानव को हमेशा से किसी अज्ञात की तलाश रही है, उसी अज्ञात की तलाश में वो भटकता रहता है । यायावरता, बंजारापन, ये मानव स्वभाव में ही बसे हुए हैं । हम सब भटकना चाहते हैं, और चाहते हैं कि यूँ ही भटकते हुए कहीं वो अज्ञात हमें मिल जाये ।